स्वर्गीयजीवन

अर्थात्

इन ट्यून विथ दि इन्फिनिट

का

हिन्दी अनुवाद ।

अनुवादक

सुख

हरिदास ऐण्ड कम्पनी ।

कलकत्ता
२०१ हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में
बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा
मुद्रित।

सन् १९१८ ई०

तीसरी बार १००० मूल्य १)

भूमिका ।

इस संसारमें सब मनुष्य यही चाहते हैं कि सुख मिले ; शान्तिके गहरे समुद्रमें हम गोता लगावें ; बल, आरोग्य, कीर्त्ति, सम्पत्ति हमें प्राप्त हो। परन्तु सुख, शान्ति, बल, आरोग्य प्राप्तिके असली मार्गसे अनभिज्ञ होनेके कारण इनकी प्राप्तिके लिये वे विपरीत पथको स्वीकार कर लेते हैं ; जिससे वे उलटे दुःख और अशान्तिके उस अन्धकारमय गहरे कूपमें जा गिरते हैं, जिससे निकलना उनके लिये असम्भव नहीं, तो दुःसाध्य तो अवश्य है। हमारे भारतीय ऋषि-मुनियोंने अपने अनुभवजन्य अनेक ग्रन्थोंकी सृष्टि कर सुख और शान्तिके मार्गमें असाधारण प्रकाश डाला है . मानव-जीवनके सर्वोच्च सुखका निदर्शन करके, उन्होंने दूसरोंके लिये उस पथको बहुत कुछ सरल बना दिया है। अनेक महानुभावोंने ऋषि-महात्माओंके प्रदर्शित मार्गपर चलकर जिस सुखका, जिस अलौकिक शान्तिका, जिस परमानन्दका दिव्य आत्मानुभव किया है उसको यथेष्ट रूपसे दर्शानेकी योग्यता अनुवादककी लेख-

नोंमें नहीं है। आज जिस अलौकिक ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद हम अपने सहृदय पाठकोंके सामने रखते हैं वह एक ऐसेही अनुभवशाली महात्माके लोकोत्तर अनुभवका दिव्य फल है। इन महात्माका नाम राल्फ वालडो ट्राइन है। आप अमेरिकामें निवास कर रहे हैं। आप बहुत समयसे आत्मानन्दके—ब्रह्मानन्दनके, उस अलौकिक प्रकाशको देखनेमें निमग्न हैं, जो मानव-जीवनका उत्कृष्ट ध्येय है। आप को जो अनुभव हुआ है, आपको जिस दिव्यताका प्रकाश मिला है—उसको आप अपने ही तक परिमित रखना नहीं चाहते। आप चाहते हैं, आपको आकांक्षा है कि, सारी मानव-जाति जो सुख शान्तिके लिये बहुतही तड़फड़ा रही है, उसके सामने अपने अनुभवजन्य सिद्धान्त रक्खे जावें। बस, इसी सर्वोच्च इच्छाको—महत्वाकांक्षाको लिये हुए आपने अनेक दिव्य ग्रन्थोंकी सृष्टिकी है। आज हम हर्षपूर्वक जिस दिव्य ग्रन्थका अनुवाद अपने प्रेमी पाठकोंको भेंट करते हैं, वह इनके सर्व-श्रेष्ठ ग्रन्थ "In tune with the infinite"का हिन्दी भावानुवाद है। पाठक, इस ग्रन्थको समग्र पढ़ जाइये—इसके महान् तत्त्वोंका कुछ अनुभव कीजिये—जिससे आपको अवश्यमेव एक तरहकी दिव्यता प्राप्त होगी। इस ग्रन्थने पाश्चिमात्य जगत्के अनेक मनुष्योंके जीवनको पलट दिया है। यही पहला ग्रन्थ है, जिससे अमेरिका-निवासी आध्यात्मिक रहस्यका ज्ञान प्राप्त करनेके मार्गमें अग्रसर हो रहे हैं। थोड़ेही

समयमें, इसकी लाखों कापियां बिक चुकी हैं। प्राय: सब पाश्चिमात्य भाषाओंमें इसका अनुवाद हो चुका है। मराठी, उर्दू, गुजराती आदि भारतीय भाषाओंमें भी इसका अनुवाद हो गया है। परन्तु राष्ट्र भाषा का दावा रखनेवाली हिन्दी भाषामें अब तक इसका अनुवाद नहीं हुआ। हम बहुत कालतक प्रतीक्षामें रहे कि, हिन्दीका कोई धुरन्धर लेखक इस सर्वोपयोगी ग्रन्थका अनुवाद प्रकाशित करे; पर अन्तमें हमारी आशा निराशा ही में परिणत हुई। तब योग्यता न होने पर भी, इस ग्रन्थका अनुवाद करना हमने प्रारम्भ कर दिया। इस ग्रन्थके अनुवाद करनेमें, हमें श्रीयुत शिवचन्द्रजी भरतिया और अपने मित्र श्रीयुत नेमचन्द्रजी मोदी बी० ए०, एल० एल० बी० से बहुत सहायता मिली है; अतएव उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

इस कार्य्यमें इन्दौरके चीफ़ जस्टिस राय बहादुर कुँवर परमानन्दजी साहिबने हमें बड़ा उत्साह प्रदान किया, इसके लिये हम उनके बड़े कृतज्ञ हैं।

इसमें, हमारे अस्वास्थ्यके कारण, मूल पुस्तकके दो परिच्छेदोंका अनुवाद न हो सका। चौथी आवृत्तिमें उनका अनुवाद भी प्रकाशित कर दिया जायगा।
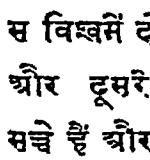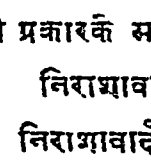
मूल ग्रन्थका यह शब्दश: अनुवाद नहीं है; पर भावानुवाद है। मूल ग्रन्थकारके भावोंको प्रकट करनेमें यह अल्पज्ञ अनु-

वादक कहाँ तक सफल हुआ है, इसका अनुमान पाठक स्वयं करलें ।

सुखसम्पत्तिराय भण्डारी,

उपसम्पादक "सद्धर्म प्रचारक" दिल्ली ।

इस विश्वमें दो प्रकारके मनुष्य हैं; एक आशावादी और दूसरे निराशावादी। आशावादी भी सच्चे हैं और निराशावादी भी सच्चे हैं। यद्यपि इन दोनोंमें इतना अन्तर है जितना प्रकाश और अन्धकारमें, परन्तु दोनों सच्चे हैं। प्रत्येक अपनी-अपनी दृष्टि से सच्चा है और यह दृष्टिही प्रत्येकके जीवनकी नियामक है। मनुष्यका जीवन शक्तिमान् है कि शक्तिहीन है, शान्तिमय है कि शान्तिहीन है, विजयी है कि पराजित है—इन सब बातोंका आधार केवल यही दृष्टि है।

आशावादियोंको यह शक्ति प्राप्त है कि, वे वस्तुओंको उनके सम्पूर्ण स्वरूपमें देख सकते हैं और उनका योग्य सम्बन्ध मालूम कर सकते हैं। निराशावादी वस्तुओंको संकुचित दृष्टिसे एवं किसी विशेष उपेक्षासे देखते हैं, अतएव वे वस्तुओंके योग्य सम्बन्धको पूर्णतया नहीं जान सकते। आशावादीकी ज्ञातव्यशक्ति ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित रहती है और निराशावादीकी ज्ञातव्यशक्ति अज्ञानावरणसे आच्छादित रहती है।

प्रत्येक जन अपनी सृष्टि अपने आन्तरिक विचारोंके अनुसार बनाता रहता है और जैसे उसके विचार होते हैं वैसीही इमारत बनाकर वह खड़ी कर देता है। आशावादी अपने ज्ञानके प्रकाशसे और अपनी आन्तरिक प्रतिभासे अपने लिये स्वर्ग बनाते हैं और जिस परिमाणमें वे अपने लिये स्वर्ग बनाते हैं उसी परिमाणमें सारे विश्वके लिये स्वर्ग बनानेमें सहायक होते हैं। इसके विपरीत निराशावादी अपने संकुचित विचारोंके कारण अपने लिये नरक बनाते हैं और जिस परिमाणमें वे अपने लिये नरक बनाते हैं, उसी परिमाणमें सारे विश्वके लिये नरक बनानेमें मददगार होते हैं।

प्रत्येक मनुष्यमें या तो आशावादके गुण विशेष होते हैं या निराशावादके, इससे यह बात स्पष्ट है कि हम प्रति समय स्वर्ग या नरक अपने आपही बनाते रहते हैं और जिस परिमाणमें हम अपने लिये स्वर्ग या नरक निर्माण करते हैं, उसी परिमाणमें सारे विश्वके लिये स्वर्ग या नरक निर्माण करनेमें सहायक होते हैं।

यहाँ स्वर्गसे मतलब एकता, एकवाक्यता और उदारतासे है और नरकसे मतलब भेदभाव, अयथार्थता और संकीर्णता से है।

किसके साथ एकता या एकवाक्यता होनेसे मनुष्य स्वर्गीय आनन्दका उपभोग कर सकता है और किसके साथ भेदभाव रखनेसे मनुष्यको नारकीय दुःख भोगना पड़ता है, इस

बातका विचार करनाही इस पुस्तकका उद्देश्य है। क्योंकि इस बातका ज्ञान हो जानेसे मनुष्य स्वर्ग अथवा नरकका द्वार खोलनेकी कुञ्जी अपने हाथमें लेले सकता है, जिसके द्वारा या तो वह स्वर्गका द्वार खोलकर अनुपम आनन्दका अनुभव करे अथवा नरकका द्वार खोलकर घोर दुःखोंके भँवर-जालमें गिरे।

स्वर्गीय जीवन

पहला अध्याय।

विश्वका उत्कृष्ट तत्त्व।
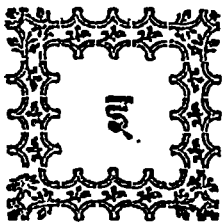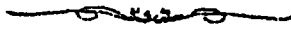
इस विश्वके सब पदार्थ जिससे उत्पन्न हुए हैं और हो रहे हैं, जो प्राणीमात्रका प्राण है, जो इस विश्वके सब पदार्थोंके द्वारा सदा प्रकट हो रहा है,—वह अनन्तजीवन परमात्मा और असीम चेतनशक्ति सबका आधार है। जब इस संसारमें व्यक्तिगत जीवन है, तो उसका ऐसा कोई अनन्त मूल

होनाही चाहिये कि, जिससे यह जीवन प्रकट हुआ। जब इस जगत्में प्रेमका गुण दृष्टिगत होता है, तो प्रेमका अनन्त मूल भी अवश्यमेव होनाही चाहिये। जब इस जगत्में ज्ञान दिखाई पड़ता है, तो ऐसा कोई ज्ञानका अनन्त मूल होनाही चाहिये, जिससे यह प्रकट हुआ। इसी प्रकार यह नियम—बल, शान्ति और जगत्की जड़ वस्तुओं तकमें यकसाँ लगता है। इस बातसे यह समझमें आगया होगा कि, सबके साथ अनन्त बल और जीवनवाला आत्मतत्त्व है, जो सबका मूल है। जो महान् शक्तियाँ और अचल नियम इस विश्वमें व्याप्त हो रहे हैं और जो हमारे इर्द गिर्द चारों ओरसे आरहे हैं, उन्हीं शक्तियों एवं नियमोंके द्वारा यह अनन्त शक्तिमय जीवन प्रकट होता है, काम करता है और व्यवस्था करता है।

हमारी संसार-यात्राका हर एक काम इन्हीं महान् नियमों और शक्तियोंके अनुसार होता है। रास्तेके किनारे उगनेवाला हर एक फूल इन्हीं नियमोंके अनुसार बढ़ता है, खिलता है और कुम्हलाता है ; बर्फका टुकड़ा इन्हीं नियमोंके अनुसार जमता है, गिरता है, जल-रूप होता है, भाफ-रूप होता है, बादलरूप होता है और फिर बर्फके रूपमें दिखाई देता है। इन सब क्रियाओंमें भी उन अचल नियमोंका हाथ है। एक तरहसे देखा जावे, तो इस संसारमें नियमके सिवा और कुछ भी नहीं है। अगर यह बात सत्य है, तो इन नियमोंको बनानेवाली इनसे महत्तर कोई शक्ति अथवा कोई

तत्त्व होना ही चाहिये। बस, इसी शक्तिको—इसी तत्त्वको हम ईश्वरकी संज्ञा देते हैं। फिर चाहे तुम उसे विश्वम्भर कहो, चाहे जगदीश्वर कहो, चाहे परमात्मा कहो ; परन्तु जहाँ तक इस शक्तिके—इस तत्त्वके स्वरूपकि विषयमें तुम्हारा हमारा मतैक्य है वहाँ तक इसके भिन्न-भिन्न नाम रखने पर भी कुछ हानि नहीं होगी।

यह अनन्तशक्तिरूपी परमात्मा सारे विश्वमें फैला हुआ है। उसीसे सब उत्पन्न होते हैं, उसीमें सब रहते हैं ; उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वस्तुतः, हम परमात्मा में ही रहते हैं, फिरते हैं और उसीसे हमें अपना जीवन प्राप्त होता है। वह हमारे जीवनका जीवन है, बल्कि यों कहना चाहिये कि वही हमारा जीवन है। हमें उसी परमात्म-जीवनसे अपना जीवन प्राप्त हुआ है और इसी प्रकार निरन्तर प्राप्त होता रहेगा। हमारा जीवन परमात्म-जीवनका अंश है। हम व्यक्तिरूप हैं और परमात्मा अनन्तजीवन है, जिसमें हम सब समा सकते हैं। परमात्म-जीवन और हमारा व्यक्तिगत जीवन मूल स्वरूपमें एक ही सा है। उनके गुणमें और स्वरूपमें भेद नहीं। भेद है, तो केवल परिमाणमें है।

कितनेही ज्ञानी महात्मा ऐसा मानते हैं कि, हमें अपना जीवन परमात्म-जीवनके दिव्य प्रवाह द्वारा प्राप्त हुआ है ; कितनेही सत्पुरुषोंका ऐसा मत है कि, हमारे जीवनकी परमात्म-जीवनके साथ एकता है ; सुतरां मनुष्य और परमात्मा

एकही हैं। अब देखना चाहिये कि, इन दोनोंमें किसका मत सत्य है। विचार करनेसे मालूम होगा कि, दोनोंका मत सत्य है। इतनाही नहीं, वरन एकही बातको ये दोनों भिन्न-भिन्न रीतिसे प्रकट करते हैं।

निम्नलिखित दृष्टान्तसे यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी। मान लो कि, दर्रेमें एक झरना है, जो पर्वतीय अटूट जलाशयसे जल प्राप्त करता है। यह बात सच है कि, दर्रेका झरना पर्वतीय अटूट जलाशयके प्रवाह द्वारा जल प्राप्त करता है, तो साथही यह बात भी सच है कि इस दर्रेवाले छोटे झरनेका जल गुण और धर्ममें अपने आदिकारण पहाड़ी जलाशयके जलके समान है; फ़र्क़ है तो केवल परिमाणमें है। अर्थात् पर्वतीय जलाशय ऐसे असंख्य झरनोंको जल दे सकता है और तोभी उसका अन्त नहीं हो सकता। यही बात मनुष्यके जीवनके सम्बन्धमें भी है। दूसरी बातोंमें मत-भेद होने पर भी, यह बात तो सबको मुक्तकण्ठसे स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि, सर्व दृश्य विश्वके साथ अनन्तजीवनरूप परमात्मा वर्तमान है, जो सबके जीवनका जीवन है और जिससे सब कुछ उत्पन्न हुआ है। हम सबको यह व्यक्तिगत जीवन उसीके दिव्य प्रवाह द्वारा प्राप्त हुआ है—यदि यह बात सच है तो हमारा व्यक्तिगत जीवन और परमात्म-जीवन गुण-धर्ममें एकहीसा होना चाहिये। अन्तर होना चाहिये, तो केवल परिमाणमें होना चाहिये। यदि ऐसा है, तो क्या यह बात

सिद्ध नहीं होती कि, मनुष्य जितनाही इस परमात्म-जीवनकी ओर झुकता है उतना ही वह परमात्म-जीवनके नज़दीक आता जाता है और जितनाही नज़दीक आता जाता है उतनीही परमात्माकी शक्तियाँ उसमें प्रकट होने लगती हैं। जब ईश्वरीय शक्तियाँ असीम और अनन्त हैं, तो इसका अनुभव करनेमें मनुष्य को जो विघ्न जान पड़ता है उस विघ्नका पैदा करनेवाला भी वह स्वयं है, क्योंकि ऊपर कहे हुए सत्यका उसे ज्ञान नहीं है।

पहले मतपर विचार कीजिये। अगर परमात्मा सबके पीछे रहता हुआ अनन्तजीवनवाली आत्मा हो कि, जिसमेंसे सब उत्पन्न हो सकते हैं; तो फिर हमारा व्यक्तिगत जीवन इस अनन्त जीवनमेंसे दिव्य प्रवाह द्वारा निरन्तर बहा करता है। यदि हम दूसरे मतके अनुसार विचार करें और यह मानें कि, हमारी व्यक्तिगत आत्मा इस परमात्माका अंशरूप है, तो फिर हमारा व्यक्तिगत रूपमें प्रकट हुआ जीवन अपने मूल अनन्तजीवनके सदृश होगा। जैसे समुद्रसे निकाला हुआ जल बिन्दु-स्वरूपमें और लक्षणमें अपने मूल समुद्रके ऐसा होता है, वैसाही हाल हमारे व्यक्तिगत जीवन और अनन्त-जीवनके विषयमें समझना चाहिये। इस स्थानपर भूल होना सम्भव है। यद्यपि परमात्म-जीवन और व्यक्तिगत जीवन स्वरूपमें यकसाँ है, तथापि अनन्त-जीवन व्यक्तिगत जीवन से इतना उत्कृष्ट है कि, उसमें सबका समावेश हो जाता है।

दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि, स्वरूपका विचार करने पर तो दोनों एक रूप हैं ; पर शक्तिके विकाशका विचार करने पर, दोनोंमें असीम अन्तर दिखाई देता है ।

दूसरा अध्याय।
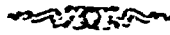
मनुष्य-जीवनका परम सत्य।

हम पहले अध्यायमें विश्वके परम सत्यका विवेचन कर चुके हैं। वह परम सत्य यह है कि, अनन्त जीवन सबके पीछे है और उसमेंसे सब निकलते हैं। विश्वके इस परम सत्यको जाननेके पश्चात्, यह जाननेकी स्वाभाविक इच्छा होती है कि, मनुष्य-जीवनका परम सत्य क्या है। हरेक विचारशील पुरुषको, पहले अध्यायसे, इस नये प्रश्नका उत्तर भी मिल जाता है।

उस अनन्त जीवनके साथ ज्ञानपूर्वक सम्बन्ध जोड़ना और उसके ईश्वरीय प्रवाहकी ओर अपना अन्तःकरण पूर्ण रूपसे खोल देनाही, हमारे तुम्हारे और हरेक मनुष्यके जीवनका परमसत्य है। मानवी जीवनका उत्कृष्ट तत्त्व यही है। क्योंकि इसमें दूसरी सब बातोंका समावेश हो जाता है और सब बातें

इसीसे फलित होती हैं। हम उस अनन्त जीवनके साथ ज्ञानपूर्वक जितनाही ऐक्य अनुभव करेंगे—अपना अंत:करण उस दिव्य प्रवाहको ग्रहण करने योग्य बनावेंगे; उतनीही ईश्वरीय शक्तियाँ हममें प्रकट होंगी।

इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यही है कि, जब हम अपने सत्यस्वरूपको पहचान लेंगे, जब हमारा ईश्वरीय शक्तियों एवं नियमोंके साथ एक मिलान हो जायगा; तब हममें भी वैसीही ईश्वरीय प्रेरणाएँ होने लगेंगी, जैसी कि संसारके महापुरुषों, अतुल प्रतापी साधुओं, उद्धारकों, तत्त्व-द्रष्टाओं, और धर्माचार्यों में होती थीं। क्योंकि जितना हम अपना सत्यस्वरूप जानेंगे, जितनी हमारी इस अनन्त-जीवनके साथ एकता होगी, उतनीही ईश्वरीय शक्तियाँ हमारे द्वारा प्रकट होंगी और काम करेंगी।

हम अपने अज्ञानके कारण, इस ईश्वरीय प्रवाह एवं दिव्य शक्तियोंसे पराङ्मुख रहकर, उन्हें अपने अन्त:करणमें प्रकट होनेसे रोकते हैं। बहुत समय तो हम जान बूझकर इस ईश्वरीय प्रवाह और दिव्य शक्तियोंके सञ्चारसे अपने हृदय-मन्दिरको बन्द कर लेते हैं; जिसका परिणाम यह होता है कि हम उन शक्तियोंसे अपने आपको विहीन कर लेते हैं, जिनके हम प्राकृतिक और सच्चे हक़दार हैं। इसके विपरीत, जब हम इस अनन्त जीवनके साथ एकता अनुभव करने लगेंगे—जब हम इस दिव्य प्रवाहको अपने अन्त:करणमें

संचारित होने देंगे ; तब हममें उच्चतम शक्तियाँ और ईश्वरीय प्रेरणाएँ प्रकट होने लगेंगी, जिनसे कि हम दिव्य मनुष्य बन जावेंगे।

दिव्य मनुष्य किसे कहते हैं ? दिव्य मनुष्य वही है, जिसमें मनुष्य होते हुए भी ईश्वरीय शक्तियाँ प्रगट होती रहती हैं। इस प्रकारके मनुष्यकी सीमा कोई भी निर्दिष्ट नहीं कर सकता। बहुजनसमाजकी शक्ति आज जो इतनी मर्यादित और संकुचित हो रही है, उसका कारण लोगोंका अज्ञानही है। अज्ञानके कारणही, मानव-समाजके विकाशमें कई प्रकारकी अड़चनें आती हैं। अज्ञानके कारणही, लोग इस बातको भूल बैठे हैं कि हम विशाल जीवनके सच्चे अधिकारी हैं ; इसीसे वे संकुचित हृदयवाले होकर दुःखमय, अशान्तिमय, रोगमय और स्वार्थमय जीवन बिता रहे हैं। उन्होंने आज तक कभी अपने सत्यस्वरूपका विचार नहीं किया।

मानव-जातिने आज तक इस बातको नहीं समझा है कि, हमारा सत्यस्वरूप परमात्म-जीवनके साथ एकता रखता है। उसने अपने अज्ञानके कारण, इस ईश्वरीय प्रवाहकी ओर अपना अन्तःकरण नहीं खोला ; जिससे उसमें ईश्वरीय शक्तियोंके प्रकट होनेका मार्ग रुकसा गया है। जब हम अपने आपको केवल मनुष्य ही मानेंगे, तो हमारी शक्तियाँ सामान्य मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक न होंगी। जब हम अपने आपको दिव्य मनुष्य मानेंगे और उसीके

अनुसार अपना आचरण बना लेंगे, -तो हमें भी दिव्य मनुष्योंके सदृश महाशक्ति प्राप्त होगी। हम अपना अन्तःकरण इस ईश्वरीय प्रवाहकी ओर ज्यों-ज्यों खोलेंगे; त्यों-त्यों हम सामान्य मनुष्योंकी श्रेणीसे दिव्य मनुष्योंकी श्रेणीमें आते जायँगे ।

हमारे मित्रके एक बाग़ है। उस बाग़में एक सुन्दर हौज़ है। पासके एक पहाड़ी जलाशयसे उस हौज़ में पानी आता है। जलाशयसे उस हौज़ तक एक नाला बँधा हुआ है, जिसके द्वारा आवश्यकतानुसार पानी ले लिया जाता है। वह स्थान अत्यन्त रमणीय है। वसन्त ऋतुके आनन्ददायक दिनोंमें तो वह हौज़ स्फटिकके समान निर्मल जलसे लबालब भरा रहता है। उस निर्मल जलपर रंगबिरंगे कमल खिले हुए हैं। उसके तीर पर नाना प्रकारके सुगन्धमय फूल उग रहे हैं। वहाँ पर जल पीनेके लिये अनेक तरहके पक्षी आते हैं, जिनके मधुर गानका अपूर्व्व आनन्द हमारा मित्र सदाही उपभोग किया करता है। पुष्पों पर भौंरोंकी गुञ्जार उसके मनको सदा मोहित करती रहती है। बाग़के चारों ओर दृष्टि फेंकनेसे अङ्गूर, दाड़िम, नारङ्गी, जामफल आदि नाना प्रकारके फल-दार वृक्ष दृष्टिको एक तरहका अपूर्व आनन्द देते हैं। जलाशय के तीरपर शीतल छाया भी है।

हमारा यह मित्र दिव्य मनुष्य है। सब मनुष्योंकी ओर इसकी प्रेममय दृष्टि है। अतएव इस स्थानपर "यह ख़ानगी

ज़मीन है, किसीको इस मार्गसे जानेकी इजाज़त नहीं, जो जायगा उसे क़ानूनकी रूसे सज़ा दिलायी जायगी" इस प्रकारका नोटिस नहीं लगा हुआ है; बल्कि "आपका स्वागत है" का सम्मान-सूचक वाक्य उस दिव्य-स्थानके दरवाज़े पर लिखा हुआ है। इससे सब लोग हमारे इस मित्रपर अत्यन्त प्रेमभाव रखते हैं। हमारे मित्रके हृदयसे भी सब लोगोंके लिये निरन्तर प्रेम-प्रवाह छूटता रहता है। वह समझता है कि, इस स्थानपर जैसा मेरा अधिकार है वैसा सभी का है।

इस दिव्य स्थानपर छोटे बालकोंका झुण्डका झुण्ड खेलनेके लिये आता है। इस स्थानमें प्रवेश करनेके पहले जो लोग श्रान्त और म्लानवदन दीख पड़ते हैं, वे यहाँसे लौटते समय हमारे मित्रके सान्निध्यसे एवं स्थानमाहात्म्यसे आनन्दी एवं प्रसन्नचित्त दृष्टिगत होते हैं। लोग हमारे मित्रको सदा यही असीस दिया करते हैं कि, ईश्वर हमारे इस बन्धुका भला करे! बहुतसे मनुष्य तो इस स्थानको दिव्य भूमि अथवा दिव्य उद्यान कहते हैं। हमारा मित्र इसे "आत्मउद्यान" कहता है और इसी जगह वह अनुपम शान्तिका अनुभव करता है। इस दिव्य स्थानमें वायु सेवनके लिये जानेवाले लोगोंको वह शान्तचित्त, शीतल और अनेक पुष्पोंके परिमलसे सुवासित वायुका सेवन करता हुआ चन्द्रमाकी चाँदनीमें घूमता दिखाई देता है। हमारा यह मित्र बहुत सीधे-सादे स्वभावका है। इसका कहना है कि इस दिव्य स्थानमें, मुझमें

विजयश्रीसे विभूषित अनेक संकल्पोंको एवं पुरुषार्थ को प्रेरणा और स्फूर्ति हुई है।

इस स्थानका वायु-मण्डल दया, सहानुभूति, शुभ भावना और आनन्दसे भरा हुआ रहता है। पशुओंको भी यह स्थान उतनाही प्रिय लगता है, जितना मनुष्योंको। उनकी ओर देखनेसे ऐसा मालूम होता है,—मानो वे इस स्थानकी पवित्रता एवं अनुपमता देखकर प्रसन्नतासे हँसते हुए अपने मनके शुभ भावोंको प्रकट कर रहे हैं; इससे उनकी ओर देखनेवालोंको भी अप्रतिम आनन्द प्राप्त हुए विना नहीं रहता। उस हौज़का दरवाज़ा निरन्तर खुला रक्खा जाता है, कि जिससे उस खेतमें चरनेवाले पशुओंको भरपूर जल मिले और शेष जल बग़लके खेतोंमें चला जावे। एक वर्षके लिये, हमारे इस मित्रको किसी कार्यवश दूसरे गाँव जाना पड़ा। उस समय यह स्थान 'व्यवहारकुशल' कहलानेवाले किसी मनुष्यको किराये पर दिया गया। उसने जलाशयसे इस हौज़ तक पानी लानेवाले नालेका मुँह बन्द कर दिया, जिससे पर्वतके ऊपरसे बहनेवाले स्फटिकके समान निर्मल जलका आना बन्द हो गया। हमारे मित्रका उस दिव्य स्थानके दरवाज़े पर लगाया हुआ सम्मान-सूचक वाक्य इस मनुष्यने हटा दिया। अब इस स्थानपर खेलनेवाले आनन्दी लड़कोंका एवं अन्य स्त्री-पुरुषोंका आना-जाना बन्द हो गया। सब बातोंमें फेरफार दिखाई देने लगा। नवीन जीवनप्रद जलके अभावसे

इस हौज़के सब फूल सूख गये। मछलियाँ जो पहले उस निर्मल जलमें तैरा करती थीं, सबकी सब मर गयीं ; जिससे वह स्थान महादुर्गन्धमय हो गया। हौज़के किनारे खिलनेवाले फल मुर्झाने लगे, भौंरोंकी गुञ्जार बन्द हो गयी, जल पीनेके लिये एवं क्रीड़ा करनेके लिये आने-जानेवाले पशु-पक्षियोंका मार्ग रुक गया। इस हौज़की वर्तमान स्थिति और पूर्वकी स्थितिमें जो फ़र्क़ हुआ, उसका कारण यही है कि जलाशयसे इस हौज़ तक जल लानेवाले नालेका मुँह बन्द कर दिया गया, जिससे हौज़में नवीन जीवन देनेवाले जलका आना रुक गया। इससे हौज़की शोभा बहुत कम हो गयी, आसपासके खेत (जो इससे जल प्राप्त करते थे) जलरहित हो गये और उन खेतोंमें आनेवाले पशु-पक्षियोंको जल मिलना बन्द हो गया ; इससे वहाँ पशुओंका आना-जाना बन्द हो गया।

क्या इस विषयमें मनुष्य-जीवनका सादृश्य हमारे दृष्टिगत नहीं होता ? जिस परिमाणसे हम इस अनन्त जीवनके साथ ऐक्य और सम्बन्ध करेंगे, जिस परिमाणसे हम इस दिव्य प्रवाहको ग्रहण करनेके लिये अपने हृदयके द्वारोंको खोलेंगे, जिस परिमाणसे सर्वश्रेष्ठ, सबसे अधिक शक्तिमान और सर्वोपरि सुन्दर तत्त्वके साथ एक-रूप होंगे ; उसी परिमाणसे हममें चारों ओरसे जीवन-प्रवाह प्रवाहित होने लगेगा। इतनाही नहीं, वरन् जिन-जिनसे हमारा काम पड़ेगा, उन्हें भी साक्षात्कारका लाभ होगा। यही हमारे मित्रका

प्रकट होता है। अतएव अदृश्य जगत् सत्य, कारणरूप एवं सनातन है और दृश्य जगत् मिथ्या, कार्य्यरूप एवं असनातन है।

शाब्दिक शक्ति अथवा यन्त्र-शक्ति वैज्ञानिक रीतिसे सत्य सिद्ध हुई है। यह हम प्रथम बता चुके हैं कि, विचारोंके प्रभावसे ही इसमें उत्पादनशक्ति प्रकट होती है। हम जिसे शब्द कहते हैं, वह विचाररूपी शक्तिका मनसे बाहर निकलते समय धारण किया हुआ इन्द्रियगोचर स्वरूप है। विचाररूपी शक्तिको एक केन्द्रमें लाकर उसे सुव्यवस्थित करनेका काम शब्दोंके द्वाराही होता है। विचाररूपी शक्तिको बहिर्गत करनेके लिये शब्दोंकी आवश्यकता होती है।

"हवामें क़िला बनाने" की कहावत हम बहुत सुनते हैं। जिसकी ऐसी आदत पड़ गयी है, उसे लोग अच्छी दृष्टिसे नहीं देखते। परन्तु यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि, ज़मीनपर क़िला बनानेके पूर्व आकाशमें क़िला बनाना पड़ता है यानी किसी वस्तुको दृश्य रूपमें प्रकट करनेके पूर्व मनोराज्यमें प्रकट करना पड़ता है—मनसूबा बाँधना पड़ता है। हवामें क़िला बनाना यानी मनमें मनसूबा बाँधना कुछ बुरा नहीं है, बशर्ते कि उसके अनुसार उस वस्तुका बाहरी स्वरूप प्रकट कर दिया जाय। मनोराज्य—मनसूबे—की उत्पत्ति और लय मनमें ही कर देना बुरा है।

इस विषयमें यह बात कहनी भी आवश्यक प्रतीत होती

है, कि मनुष्यमें अपनी मनकी प्रकृतिके सदृश विचार आकर्षित करनेकी शक्ति होती है। "समानशील व्यसनेषु सख्यम्" (अर्थात् हमपेशा हमपेशेसे दोस्ती करता है) का नियम जैसे विश्वके पदार्थोंके लिये है; वैसेही विचारोंके लिये भी है। इस नियमका कार्य निरन्तर होता रहता है; यह बात दूसरी है कि हमें उसका ज्ञान हो अथवा न हो। हम मानव-प्राणी विचाररूपी सूक्ष्म महासागरमें रहनेवाले हैं—ऐसा कहनेमें कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी। इसमें से निकलने वाली विचाररूपी असंख्य लहरें, इस महासागरके पृष्ठ-भाग पर इधर-उधर टकराती रहती हैं। कोई समझे अथवा न समझे, पर इन लहरोंका असर सब पर थोड़ा-बहुत अवश्यमेव होता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी प्रकृति कोमल है, अर्थात् उनका मन उनके क़ाबूमें नहीं रहता; इससे दूसरोंके जैसे-तैसे विचार उनपर असर कर जाते हैं। पर कितनेही मनुष्य दृढ़ मनके होते हैं, जो इस बातका ख़्याल रखते हैं कि हमारे मनमें बाहरके कैसे विचार आते हैं। वे लोग सिर्फ अच्छे विचारोंको अपने मनमें आने देते हैं, बुरे विचारोंकी ओर अपने मनका द्वार बन्द रखते हैं।

हमारा एक मित्र, एक सुप्रसिद्ध समाचारपत्रका सम्पादक, इतनी कोमल प्रकृतिका है कि वह किसी जनसमूहमें, सभामें अथवा मेलेमें जावे, वहाँपर लोगोंसे उसकी बातचीत हो, तो उन लोगों की मानसिक दशा एवं शक्तिका असर उसपर झट

हो जाता है। उसकी मानसिक शक्तिकी कोमलताके कारण बाहरी विचारोंका परिणाम उसपर इतना अधिक हो जाता है कि, किसी जन-समूहमेंसे आनेके बाद तीन चार दिन तक वह अपनी असली हालतको प्राप्त नहीं होता।

इस तरह कोमल-प्रकृति होना, बहुतसे लोग बड़ा ही दुर्भाग्य समझते हैं; परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। आन्तरिक आत्माकी उच्च प्रेरणा एवं बाहरी उच्च और शुभ शक्तियाँ ग्रहण करनेके अनुकूल प्रकृति हो तो लाभकारी है। परन्तु मनुष्यका अपने मनपर इतना अधिकार हो कि, सिर्फ वह उच्च प्रेरणाओं एवं विचारोंको ग्रहण करे; तभी वह स्थिति लाभकारी हो सकती है; नहीं तो ऐसी प्रकृतिवाला मनुष्य बहुतही दुखी होता है। इस शक्तिको मनुष्य चाहे तो प्राप्त कर सकता है।

इस शक्तिको प्राप्त करनेके लिये मनुष्य मनमें दृढ़ निश्चय करके अपने मनकी वृत्तिको नीचे लिखे हुए विचारोंसे उत्साहित करे—"सब क्षुद्र विचारोंके सामने मैं अपने मनके द्वारोंको बन्द करता हूँ और सब प्रकारके उच्च विचारोंको ग्रहण करनेके लिये अपने मनोमन्दिरके द्वारोंको खोलता हूँ।" इस प्रकारका अभ्यास करनेसे, थोड़े समयमें, मनकी आदत भी उसी प्रकारकी हो जाती है। ऐसी वृत्ति करनेके प्रयत्नमें मनुष्य शुरूसे अन्त तक लगा रहे; तो उसे इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि उसका अभीष्ट बहुत शीघ्र

सिद्ध हो जाता है। इस प्रकारका अभ्यास करनेसे मनुष्य दृश्य एवं अदृश्य संसारके नीच एवं अनिष्ट विचारोंसे दूर रह सकता है और सब प्रकारकी ऊँची एवं इष्ट प्रेरणाएँ आमन्त्रण मिलनेके कारण उसमें आ जाती हैं।

यहाँ एक प्रश्न उठता है, कि अदृश्य जगत् क्या है? विश्वके जिस भागमें विचार, इच्छाएँ एवं प्रेरणाएँ प्रकट होती हैं उसे अदृश्य जगत् कहते हैं। इन विचारोंको—इन इच्छाओंको स्थूल भुवनपर रहनेवाले—जीवित कहलानेवाले मनुष्य भी उत्पन्न करते हैं और मृत्युके कारण जिनका भौतिक शरीर नष्ट हो गया है, वे भिन्न प्रकारके देहधारी जीव भी उत्पन करते हैं।

मनुष्यके व्यक्तिगत जीवनका आरम्भ इस स्थूल भुवन पर ही होता है। जैसे-जैसे उसका दिव्य जीवन और शक्तियाँ व्यक्त होती जाती हैं; वैसेही वैसे वह सूक्ष्म भुवनमें ऊपर चढ़ता जाता है। जिस प्रकार प्रत्येक स्थूल शरीरके साथ और ऊपर सूक्ष्म शरीर है; वैसेही प्रत्येक स्थूल भुवनके साथ और ऊपर सूक्ष्म भुवन है। यह स्थूल शरीर तो ऐसा जान पड़ता है कि, मानों यह इस स्थूल भुवनपर सूक्ष्म शरीरका प्रतिबिम्बही है। सूक्ष्म भुवनसे लेकर—जहाँ तुरन्तके मरे हुए जीव रहते हैं—आत्मिक भुवन तक, जिसका ख़याल करना भी कठिन है अनेक भुवन और स्थितियाँ हैं। इस तरह मनुष्य-शरीरके दो विभाग किये जा सकते हैं; एक स्थूल और दूसरा

सूक्ष्म। स्थूल शरीरके भीतर सूक्ष्म शरीर वैसेही रहता है, जैसे भूसी या छिलकेके भीतर अन्न या फल रहता है और जैसे अन्न या फलके पक जानेपर भूसी या छिलका निकम्मा हो जाता है वैसेही सूक्ष्म शरीरके पूर्ण होजाने पर स्थूल शरीर निकम्मा हो जाता है। इस सूक्ष्म शरीरके भिन्न-भिन्न विभाग भिन्न-भिन्न भुवनोंसे सम्बन्ध रखते हैं; इससे आत्मा भी उनके द्वारा भिन्न-भिन्न भुवनोंसे सम्बन्ध रखती है और उसकी शक्तियाँ व्यक्त होती जाती हैं।

चाहे जिस रूपमें जीवन प्रकट हुआ हो, परन्तु वह सनातन और नित्य है। बाह्य आकारके बदलनेसे उसके अमरत्वमें किसी प्रकारका फ़र्क़ नहीं पड़ता। जीवन विश्वका एक नित्य तत्त्व है। जिन आकारोंके द्वारा वह प्रकट होता है उनके बदलनेसे भी उसमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन नहीं होता। जीव किसी स्थूल शरीरको छोड़कर निकल जाता है; तो उस से यह प्रमाणित नहीं होता कि उसका पहलेकी तरह-अस्तित्व नहीं है। सूक्ष्म शरीरमें उसके जीवनका प्रारम्भ होना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पहले उसका अन्त नहीं हुआ था। अलबत्ता यह कह सकते हैं कि, जबसे उसने इस रूपको छोड़ा तबसे वह दूसरे रूपमें प्रकट हो गया; क्योंकि अखिल, जीवन सीढ़ियोंकी नसेनी है। जीवन क्रमशः विकसित होता है—एक-एक सीढ़ी करके चढ़ता है और दिव्यता प्राप्त करता जाता है; यह नहीं कि नीचेकी दशाओंको छोड़कर एकदम

ऊँची दशाओंको पहुँच जावे—निचली सीढ़ीसे कुदका मार कर एकदम ऊपरकी सीढ़ीपर चढ़ जावे।

जिस प्रकार इस स्थूल भुवनपर मनुष्यका जीवन है; उसी प्रकार सूक्ष्म भुवनोंमें भी सूक्ष्म आकारोंमें भिन्न-भिन्न स्थितियोंमें जीवोंका अस्तित्व होता है। "समानशील व्यसनेषु सख्यम्" का जो नियम है—हमपेशेके हमपेशेसे मिलनेका जो नियम है—उसका कार्य हमेशा होता रहता है। हम अपने विचारोंके सदृश विचारोंको अदृश्य जगत्से निरन्तर अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। बाहरी विचारोंका अपने ऊपर असर होने देना कितनेही लोगोंको अच्छा नहीं लगता, परन्तु ज़रा विचार करनेसे इसकी श्रेष्ठता मालूम हो जाती है। हम सब एक दूसरेसे जञ्जीरकी कड़ियोंकी तरह मिले हुए हैं। अतएव हम जैसे विचार करेंगे, वैसेही विचार हमारी ओर आवेंगे।

परन्तु हमको कैसा विचार करना चाहिये और बाहरकी कैसे विचार ग्रहण करनेके अनुकूल होना चाहिये—यह बात अपनी-अपनी समझपर है। हम किसी संयोगके अधीन नहीं हैं—किसी संयोगके अधीन होना और न होना भी अपने हाथमें है।

मलाह नावकी पतवार अपने हाथमें रखता है और किस रास्तेसे जाना है, कहाँ रुकना है, किस तरह नावको खेना है इत्यादि बातोंका ख़याल रखकर, वह नावको अभीष्ट स्थानमें ले जाता है। अगर वह पतवार हाथसे छोड़ दे और नावको

उसको इच्छानुसार जाने दें, तो नाव तूफानके झपेटेमें कहींको कहीं चली जायगी। ठीक यही हाल हमारे मनका है। हम अपने मनकी पतवार हाथमें रक्खें, तो हम अपने विचारोंके अनुकूल विचारोंको सारे जगत्के महान् पुरुषोंके पाससे आकर्षित कर सकते हैं। हम चाहे कहीं हों और कुछ भी करते हों, परन्तु यह बल अपने हाथमें है; इसके लिये हमें खूब आनन्द मनाना चहिये।

कुछ दिन हुए, हम अपने एक मित्रके साथ घोड़ेपर सवार हो कहीं फिरनेको जा रहे थे। उस वक्त यह बात निकली कि, "आजकलके लोग जीवनका रहस्य जाननेकी बहुत कोशिश करते हैं; अनन्त जीवनके साथ अपना क्या सम्बन्ध है, यह बात जाननेकी अत्यन्त उत्कण्ठा प्रदर्शित करते हैं। चारों ओर आध्यात्मिक उत्कर्ष दीख पड़ता है। उन्नीसवें शतकके गत थोड़े वर्षों से उत्कर्षके चिह्न देख पड़ते हैं। बीसवें शतकमें तो उसको विशाल रूपमें हम लोग देख सकेंगे।" इस बातके बीचमेंही हमने अपने मित्रसे कहा,—"महान् दार्शनिक एमर्सन—जो अपने समयमें बहुतही आगे बढ़ा हुआ था, जिसने आत्मिक उन्नतिके लिये, बहुतही श्रद्धाके साथ, निर्भय रीतिसे, बहुत समय तक प्रयत्न किया था—यदि आज इस स्थितिको देखनेके लिये उपस्थित होता, तो उसे कितना आनन्द होता।" इसपर हमारा मित्र बोला कि,—"हम किस तरह मालूम कर सकते हैं कि अब वह इस हालतको नहीं

देख रहा है या इस हालत में उसका हाथ नहीं है? शायद पहलेसे भी उसका हाथ ज़ियादा हो,तो क्या आश्चर्य है?"हमें यह बात ठीक जँची और इसके लिये हमने अपने मित्रका बहुत उपकार माना। वास्तमें यह बात सच है कि, जिन्होंने इस विश्वमें लोगोंके कल्याणके लिये काम किया है, वे सूक्ष्म भुवनमें रहते हुए भी वही काम करते हैं।

अब साइन्स इस बातको सिद्ध कर रहा है कि, अपनी स्थूल इन्द्रियोंसे हमें जितने पदार्थों का ज्ञान होता है, उनसे अनन्त गुने पदार्थ इन्द्रियोंके अगोचर हैं। जिस महान् शक्तिके कारण हमारे हाथसे बड़े-बड़े कार्य्य होते हैं, वह हमें अदृश्य जगत्से प्राप्त होती है। अतएव उसका ज्ञान हमें इन स्थूल इन्द्रियोंके द्वारा नहीं हो सकता। चाहे उसका ज्ञान हो या न हो, परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि, दृश्य विश्व कार्य्यरूप है और अदृश्य विश्व कारणरूप है। विचार एक प्रबल शक्ति है और हमारे अच्छे-बुरे विचारोंको यह शक्ति प्राप्त है कि, वे अपने सदृश विचारोंको बाह्य जगत्से आकर्षित कर सकते हैं। इससे यह बात स्पष्ट है कि अपने जीवनको उन्नतिके मार्गपर लगाना या अवनतिके मार्गमें लेजाना, हमारे विचारोंपर अवलम्बित है। एक बहुतही दिव्य आन्तरिक दृष्टिवाले दार्शनिक का कथन है कि,"आध्यात्मिक और भौतिक पदार्थों में एकही नियम वर्तमान है। जो निरन्तर उदास रहते हैं—निराशामें मग्न रहते हैं वे औदासीन्य-परिपूर्ण एवं

निराशाभिभूत तत्वोंको अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं और जिन्हें विजयमें अश्रद्धा रहती है वे कदापि विजय प्राप्त नहीं कर सकते—वे दूसरोंको बोझ समान जान पड़ते हैं। उत्साही, श्रद्धायुक्त और आनन्दी पुरुष निरन्तर विजयके तत्वोंको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। किसी मनुष्यका स्वभाव आनन्दी है कि विषादी है—यह बात उसके मकानके आगे या पीछेवाले मैदानके देखनेसे भी मालूम हो सकती है। स्त्रीकी पोशाककी ओर दृष्टि डालनेसे उसकी मानसिक स्थिति जानी जा सकती है। फूहड़ स्त्रीके मनमें निराशा, दुःख एवं अव्यवस्थाकी प्रधानता रहती है। फटे चिथड़े और मैल शरीर पर प्रकट होनेके पूर्व विचारमें अदृश्य रूपसे प्रकट होते हैं। जिस विचारको प्रकट करनेके लिये बहुत प्रयत्न किया जाता है, वह विचार स्पष्टतया प्रकट हो जाता है। एक ताम्बेका टुकड़ा रासायनिक प्रयोगसे न दिखाई देनेवाले ताम्रकणको आकर्षित कर लेता है और उन्हें दृश्य रूपमें परिवर्त्तित कर देता है। उसी तरह एक विचार वाह्य परमाणुओंको आकर्षित करके उन्हें दृश्यरूपमें प्रकट कर देता है।

जिसका मन निरन्तर उत्साही, आशावन्त, धैर्यशाली और दृढ़ रहता है, वे इन्हीं गुणोंके अनुकूल तत्त्व एवं शक्तियोंको आकर्षित करते रहते हैं।

तुम्हारे हरेक विचारको, तुम्हारे लिये, अक्षरशः क़ीमत

है। तुम्हारे शरीरका बल, तुम्हारे मनकी शक्ति, तुम्हारे कार्य्यमें यश, तुम्हारी संगतिसे दूसरोंको मिलनेवाला आनन्द इत्यादि सब बातोंका आधार केवल विचारही है। जिस दिशाकी ओर तुम अपने मनको प्रवृत्त करते हो, उस दिशासे तुम्हारी आत्मा, अपनी मानसिक दशाके अनुकूल अदृश्य तत्त्वोंको अपनी ओर आकर्षित करती है। यह जिस प्रकार रासायनिक नियम है, वैसेही आध्यात्मिक नियम भी है। जिन पदार्थों को हम इन स्थूल नेत्रोंके द्वारा देख सकते हैं, केवल उन्हींमें रसायनशास्त्र बद्ध नहीं है। जिन पदार्थों को हम इन स्थूल नेत्रोंके द्वारा देख सकते हैं, उनसे दश हज़ार गुने ऐसे पदार्थ हैं जो हमारी स्थूल दृष्टिके अगोचर हैं। महात्मा ईशाकी आज्ञा है कि, 'जो तुम्हारा बुरा करे उसका भी तुम भला करो' यह बात शास्त्रीय नियमके अनुकूल है। श्री बुद्धदेवने भी कहा है :—

"न हो वेरेण वेराणी सम्मन्तीध्य कुदाचन।
अवेरेण च सम्मन्त एस धम्मो सनातनो॥

वैर कदापि वैरसे शान्त नहीं होता, बल्कि प्रेमसे उसकी शान्ति होती है—यह सनातन नियम है। अच्छा काम करना, मानो प्राकृतिक शुभको एवं शक्तिको अपनी ओर आकर्षित करना है। इसके विपरीत, बुरा काम करनेसे बुराईके तत्त्वोंको हम अपनी ओर खींचते हैं। जब हमारी आँखें खुल जायँगी—हमें सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जावेगा, तब हम अपनी

रक्षाके लिये खराब विचार करना बन्द कर देंगे। जो दिन-रात द्वेषमें ही रहते हैं, वे द्वेषसे ही मरते हैं—यह बात वैज्ञानिक रीतिसे सत्य सिद्ध हुई है।

इस विषयमें एक अनुभवी विज्ञानीका कथन है, कि "आकर्षणका नियम प्रत्येक भुवन पर एकसा वर्तमान है।" जिसकी मनुष्य इच्छा करता है एवं भरोसा रखता है, उसे अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। यदि वह इच्छा तो एक बातकी करे और भरोसा दूसरीका रक्खे ; तो उसकी दशा उस कुटुम्बकी सी होगी, जिसके आदमी मत-भेदके कारण आपसमें लड़-झगड़कर तबाह हो जाते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि, जिसकी वह इच्छा करे उसीका भरोसा रक्खे। जहाँ तक तुम इस विचारपर क़ायम रहोगे, वहाँ तक जानकारीमें अथवा बेजाने तुम अपने विचारोंके अनुकूल तत्वोंको एक समान खींचते रहोगे। विचार अपनी ख़ास जायदाद है। हम इन्हें नियंत्रित कर सकते हैं, बाक़ायदे रख सकते हैं—इस बातका विचार करके हमें चाहिये कि हम अपने विचारोंको अपनी इच्छानुकूल बनालें।

मनकी आकर्षण-शक्तिके विषयमें हम विचार कर चुके हैं। जिनके विचार बहुत प्रबल इच्छावाले होते हैं और उस इच्छाके पूर्ण होनेमें जिनको अविचल आशा होती है, उनकी उस इच्छाको ही 'श्रद्धा' कहते हैं। जिस परिमाणसे यह इच्छा अथवा श्रद्धा काम करेगी और जितना उसे आशारूपी जल

मिलेगा; उसी परिमाणसे वह अभीष्ट पदार्थोंको आकर्षित करेगी और उन्हें अवश्यही दृश्य रूपमें प्रकट करेगी।

संकल्प-शक्ति दो प्रकारकी है—मानवी संकल्प-शक्ति और दैवी संकल्प-शक्ति। हम ऊपर कह चुके हैं कि, हमारी एक प्रकृति असनातन—अनित्य है और दूसरी ईश्वर-सदृश सनातन—नित्य है। जिन मनुष्योंको अपनी ईश्वर-सदृश प्रकृतिका ज्ञान नहीं है, जिनका विश्व केवल सीमाबद्ध इन्द्रियगोचर ही है, जितना ये भौतिक इन्द्रियाँ अनुभव कर सकें, उतनाही जिनका सुख है और ऐसे सुखकी प्राप्ति करनाही जिनका अभीष्ट है, उन मनुष्योंके संकल्पोंको मानवी संकल्प कहते हैं। इसके विपरीत, जिन्हें अपनी ईश्वर-सदृश प्रकृतिका ज्ञान है, जिनको विश्वकी महान् शक्तिका अनुभव हो गया है, जिनको परमात्मासे अपनी एकताकी पूर्ण प्रतीति है—क्रम-विकाशके कारण जिनकी इन्द्रियोंकी शक्ति बहुत प्रबल हो गयी है, विषय-सुखकी अपेक्षा जिन्हें अत्युत्तम सनातन सुखकी विशेष रुचि है, उन मनुष्योंके संकल्पोंको दैवी संकल्प कहते हैं।

मानवी संकल्प मर्यादित हैं—उनकी गति निश्चित है। ईश्वरीय संकल्प अमर्याद हैं—असीम हैं। वे सर्वतोगामी और सर्व-साधक हैं। अतः मानवी संकल्पोंको जितनाही दैवी संकल्पोंका स्वरूप दिया जायगा, उतनेही उनमें सर्वतोगामित्व और सर्वसाधकत्वके गुण प्राप्त होंगे।

प्रत्येक जीवनकी शक्ति बल्कि प्रत्येक जीवन, जिसकी साथ

सम्बन्ध रखता है उसके अनुसार होता है। परमात्मा वस्तुतः विश्वव्यापी है एवं विश्वातीत है। वह पहलेकी तरह आज भी प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें काम करता है एवं राज्य करता है। हम उसे जितनाही विश्वव्यापी—विश्वातीत समझेंगे, उतनाही हम उसके जीवनमें और शक्तिमें हिस्सा लेनेको समर्थ होंगे। हम परमात्माको जीवन और शक्तिका मूल मानकर, जितनाही उसके साथ अपना सम्बन्ध करेंगे उतने ही हम उसके जीवनके हिस्सेदार बनेंगे और उसके गुण हममें प्रकट होंगे। ज्यों-ज्यों हम इस विश्व-व्यापी और विश्वातीत जीवन-प्रवाहके प्रवेशार्थ अपने हृदय-मन्दिरके किवाड़ोंको खोलेंगे; त्यों-त्यों हम एक खाड़ी बनते जावेंगे, जिससे अनन्त-ज्ञान और बल हममें आवेंगे।

मनरूपी साधनके द्वाराही आत्मिक और स्थूल जीवनका सम्बन्ध होता है और आत्मिक जीवन स्थूल जीवनके द्वारा प्रकट होने लगता है। मनको निरन्तर आत्मिक प्रकाशकी आवश्यकता रहती है। जिस परिमाणसे हम मनरूपी साधन द्वारा दैवी तत्त्वके साथ ऐक्य अनुभव करेंगे; उसी परिमाणसे वह प्रकाश हममें स्फुरित होगा, क्योंकि प्रत्येक आत्मा इस दैवी तत्त्वका भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत रूप है। इससे आन्तरिक प्रतिभा बढ़ती है। यह आत्मिक शक्ति है, जिसके द्वारा मनुष्य परमात्माके साथ सम्बन्ध कर सकता है और उस विषयका ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जीवन और प्रकृतिके रहस्य

इस शक्तिके आगे प्रकट हो जाते हैं। यह एक आत्मिक बुद्धि है, जिसके द्वारा दैवी स्वभावका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है और उसे ऐसा मालूम होने लगता है कि मानों वह ईश्वरका पुत्र ही है! इस तरह प्राप्त की हुई आध्यात्मिक शक्ति और प्रकाश आन्तरिक दृष्टिसे खिलता है। ऐसे मनुष्यका लक्ष्य जिस वस्तुकी ओर जाता है उस वस्तुके स्वभाव, लक्षण और उद्देश्य उसके ज्ञानगम्य हो जाते हैं। जिस प्रकार स्थूल इन्द्रियाँ बहिर्मुख रहती हैं; उसी प्रकार आन्तरिक प्रतिभा अन्तर्मुख रहती है। ज्ञान प्राप्त करनेके बाह्य साधनोंके सिवा सत्यकी परीक्षा करनेकी शक्ति इस आन्तरिक प्रतिभामें रहती है। सब प्रकारके प्रेरित शिक्षण (Inspired Teaching) और आध्यात्मिक उद्गार आत्माकी अपूर्व शक्तिके द्वारा प्रकट होते हैं। इस तरह वह अनन्त ज्ञानमय दिव्य शक्तिसे अपना सम्बन्ध कर सकता है, उसकी प्रेरणा ग्रहण कर सकता है और खुद ज्ञानी अथवा द्रष्टा (Seer) बन सकता है।

इस दशामें मनुष्यका मन बन्धन-रहित हो जाता है और निष्पक्ष होनेसे सत्यका ग्रहण कर सकता है। ज्ञान प्राप्त करनेके बाह्य साधनोंकी आवश्यकता नहीं रहती। वह सब मनुष्योंकी ओर दिव्य दृष्टिसे देखता है और सर्वज्ञताके कारण उसे सब कुछ साफ-साफ मालूम हो जाता है। आन्तरिक प्रतिभाके कारण उसे ईश्वरीय योजनाका ज्ञान हो जाता है और उसके साथ तन्मय हुए बिना वह नहीं रह सकता।

कितनेही लोग इस आन्तरिक प्रतिभाको आत्माका शब्द कहते हैं, कितनेही इसे ईश्वरीय ध्वनि कहते हैं और कितनेही इसे छठी इन्द्रिय भी कहते हैं; परन्तु यह आन्तरिक—आध्यात्मिक इन्द्रिय है; जिस परिमाणसे हमें अपने असली स्वरूपका ज्ञान होगा और जितनी हम अनन्त जीवनके साथ एकताका अनुभव करेंगे एवं दिव्य प्रवाहकी ओर अपना अन्तःकरण खोलेंगे; उसी परिमाणसे—उतनीही यह आत्मिक ध्वनि—यह ईश्वरीय नाद एवं आन्तरिक प्रतिभाकी आवाज़ स्पष्टतया होने लगेगी। और उसको सुनकर हम तदनुसार जितनाही अपना आचरण बनावेंगे, उतनीही वह आवाज़ और स्पष्ट होगी और अन्तमें वह हमारे जीवनका पथ-प्रदर्शक दीपक बनेगी।

तीसरा अध्याय ।

जीवनकी पूर्णता ।

शारीरिक आरोग्य और शक्ति ।

परमात्मा अगाध जीवनका प्राण है। हम मानव प्राणी इसी अनन्तके अंश हैं। इस ईश्वरीय प्रवाहकी ओर अपना अन्तःकरण खोलनेकी शक्ति पूर्णतया हममें विद्यमान है। इस ईश्वरीय चैतन्यको स्वभावतया कोई भी रोग नहीं हो सकता; क्योंकि चैतन्य नित्य है और रोग अनित्य है। इस ईश्वरीय नियमका, हम जान बूझकर, अथवा अज्ञानतासे, उल्लङ्घन करते हैं, तो उसके प्रतिफल रूप हमें दण्ड मिलता है। वही हमारा रोग है। अतएव रोग ईश्वरीय चैतन्यको कभी नहीं हो सकता। यह ईश्वरीय जीवन हमारी देहमें संचारित होता रहेगा, तो हमारी देह निश्चय ही आरोग्यरूपी महासागरमें गोते लगाती रहेगी। यह बात ध्यानमें रखना अति आवश्यक है कि, सृष्टिमें सारे जीवनकी प्रवृत्ति बहिर्मुख है

अर्थात् जीवन-प्रवाह निरन्तर भीतरसे बाहरकी ओर आता रहता है। एक सर्वमान्य एवं अबाधित नियम यह है कि, जैसा भीतर वैसा बाहर। इसलिये जैसा मन वैसा शरीर। मन कारण है और शरीर उसका कार्य, यानी हमारा शरीर हमारे मनकी भिन्न-भिन्न दशाओं पर, हमारे भिन्न-भिन्न विचारों पर एवं भिन्न-भिन्न मनोविकारोंपर सर्वथा निर्भर करता है।

मनका प्रभाव शरीरपर कितना पड़ता है, यह निम्न-लिखित दृष्टान्तोंसे स्पष्ट ध्यानमें आजावेगा। एक मनुष्य बड़े आनन्दसे समय व्यतीत कर रहा है। सांसारिक रीतिसे वह सब प्रकार सुखी है। वह एक समय बड़े ही आनन्दमें बैठा था कि उसने एकाएक अपने इकलौते प्रिय पुत्रकी मृत्युका दुःखदायी समाचार सुना, जिससे उसका वह आनन्द—उसका वह सुख एकाएक दुःखमें एवं घोर वेदनामें परिवर्त्तित हो गया। उसके मुँहकी कान्ति का नाश होकर चिन्ताके, घोर दुःखके, चिह्न उसके चेहरेपर दृष्टिगोचर होने लगे। उसका समग्र शरीर थर-थर काँपने लगा और अन्तमें वह मूर्च्छित एवं निश्चेष्ट होकर भूमिपर गिर पड़ा। इससे यह पाया जाता है कि, उस मनुष्यको यह दुःख प्रथम मनमें हुआ और पीछे मन के द्वारा ही उसका शरीर इस दुःखमय दशाको प्राप्त हुआ।

एक दूसरा मनुष्य बड़े ही आनन्दसे भोजन कर रहा था; उसके पास एकाएक यह समाचार पहुँचा कि, जिस साहू-कारके यहाँ उसने अपनी सारी सम्पत्ति धरोहर रक्खी थी, उस

उसको इच्छानुसार जाने दे, तो नाव तूफानके झपेटेमें वहींको कहीं चली जायगी। ठीक यही हाल हमारे मनका है। हम अपने मनकी पतवार हाथमें रक्खें, तो हम अपने विचारोंके अनुकूल विचारोंको सारे जगत्के महान् पुरुषोंके पाससे आकर्षित कर सकते हैं। हम चाहे कहीं हों और कुछ भी करते हों, परन्तु यह बल अपने हाथमें है; इसके लिये हमें खूब आनन्द मनाना चहिये।

कुछ दिन हुए, हम अपने एक मित्रके साथ घोड़ेपर सवार हो कहीं फिरनेको जा रहे थे। उस वक्त यह बात निकली कि, "आजकलके लोग जीवनका रहस्य जाननेकी बहुत कोशिश करते हैं; अनन्त जीवनके साथ अपना क्या सम्बन्ध है, यह बात जाननेकी अत्यन्त उत्कण्ठा प्रदर्शित करते हैं। चारों ओर आध्यात्मिक उत्कर्ष दीख पड़ता है। उन्नीसवें शतकके गत थोड़े वर्षोंसे उत्कर्षके चिह्न देख पड़ते हैं। बीसवें शतकमें तो उसको विशाल रूपमें हम लोग देख सकेंगे।" इस बातके बीचमेंही हमने अपने मित्रसे कहा,—"महान् दार्शनिक एमर्सन—जो अपने समयमें बहुतही आगे बढ़ा हुआ था, जिसने आत्मिक उन्नतिके लिये, बहुतही श्रद्धाके साथ, निर्भय रीतिसे, बहुत समय तक प्रयत्न किया था—यदि आज इस स्थितिको देखनेके लिये उपस्थित होता, तो उसे कितना आनन्द होता।" इसपर हमारा मित्र बोला कि,—"हम किस तरह मालूम कर सकते हैं कि अब वह इस हालतको नहीं

हम अपने मित्रके साथ चिड़चिड़े स्वभावके विषयमें वार्तालाप कर रहे थे। हमारा मित्र बोला कि, मेरे पिताका स्वभाव बहुतही चिड़चिड़ा है। हमने तत्काल कह दिया कि, तुम्हारे पिताकी प्रकृति नीरोगी नहीं होगी, वह सशक्त, उत्साही एवं प्रफुल्लित न होंगे। जिस प्रकार कोई सुयोग्य वैद्य अपने पास आये हुए रोगीके रोगकी परीक्षा करता है और उस रोगीके एवं रोगके कार्य्य-कारण-भावका वर्णन स्पष्टतया करके, रोगीको आश्चर्यमें डाल देता है; उसी प्रकार हमारा मित्र हमारे मुँहसे अपने पिताकी पूर्वस्थिति और शारीरिक रोगोंकी बात ठीक-ठीक सुनकर बोला,—"क्यों जी! तुमने तो मेरे पिता को कभी कहीं देखा तक नहीं, तोभी तुमने उनकी पूर्वस्थिति और रोगका हाल ठीक-ठीक कह दिया, इस बातका मुझे बड़ा आश्चर्य है।" हमने कहा—इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है, तुमने अभी कहा था कि तुम्हारे पिता बहुत चिड़चिड़े एवं खौफनाक स्वभावके हैं। तुम्हारे यह कारण बताने पर हमें उसका कार्य विदित होगया। तुम्हारे पिताकी स्थितिका वर्णन करनेमें हमने केवल कारणके मुख्य परिणाम दिखाये हैं।

भय और चिन्तासे शरीरपर इतना बुरा परिणाम होता है कि नाड़ियोंमें बहनेवाली जीवन-शक्ति धीमी और मन्द पड़ जाती है; परन्तु आशा और शान्तिका परिणाम इसके विपरीत होता है अर्थात् नाड़ियोंमें बहनेवाली जीवन-

शक्ति इतने ज़ोरसे प्रवाहित होती है कि रोग फटकने नहीं पाता।

कुछ समयके पूर्व एक स्त्री हमारे मित्रसे अपनी शारीरिक असह्य वेदनाके विषयमें कह रही थी, पर हमारे मित्रको यह बात ज्ञात थी कि उक्त महिला और उसकी बहनमें अन-बन है। उसकी वेदनाकी सारी हालत हमारे मित्रने ध्यान-पूर्वक सुनकर उसके चेहरेकी ओर टकटकी लगाकर देखा और बड़ेही कारुणिक एवं निश्चयात्मक स्वरसे कहा कि अपनी बहनको क्षमा करो। उस स्त्रीने आश्चर्यपूर्ण दृष्टि करके कहा, कि मैं उसे क्षमा नहीं कर सकती। हमारे मित्रने कहा कि तब तुम्हारा रोग साक्षात् धन्वन्तरि महा-राजसे भी नहीं जावेगा। कुछ दिनों बाद वह स्त्री पुनः हमारे मित्रसे मिली और कहने लगी कि, मैंने आपका उपदेश ग्रहण किया और अपनी बहनसे भेंटकर उसको क्षमा कर दिया। इसीसे हम दोनोंमें गाढ़ी प्रीति हो गयी। परन्तु मैं बड़े आश्चर्यसे कहती हूँ कि, उसी दिनसे मेरी तकलीफ़ धीरे-धीरे रफ़ा होने लगी और अब मैं भली चङ्गी हो गयी हूँ। हम दोनोंमें अब इतनी प्रीति हो गयी है कि, हम कुछ कालके लिये भी एक दूसरीसे अलग नहीं हो सकतीं।

एक दूध पीते बच्चेकी माता कुछ समय तक क्रोधके कारण आपेसे बाहर होगयी थी। इस तीव्र और प्रचण्ड मनोविकारके कारण उसका दूध इतना विषैला होगया कि, उसके पीनेसे उस

का बच्चा एक घण्टेमें मर गया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि, माताके मनोविकारोंका परिणाम बच्चे पर बहुतही बुरा होता है।

एक वैज्ञानिकने निम्नलिखित बातको कई बार जांचकर साबित किया है कि प्रचण्ड क्रोध, दीर्घ द्वेष, अनिवार्य काम आदि मनोविकारोंसे ग्रस्त कई मनुष्य एक गर्म किये कमरेमें बिठाये गये और जब वे सब पसीनेसे तर होगये; तब उनके पसीनेको रासायनिक प्रयोगसे विश्लेषण करके यह मालूम कर लिया गया कि, कौनसा मनुष्य किस मनोविकारसे ग्रस्त था। यही बात उनकी लारकी परीक्षासे भी सिद्ध हुई। एक सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखक और उपाधिधारी डाक्टरने उन शक्तियोंका अध्ययन किया है, जो शरीर को बनाती हैं एवं गिराती हैं। वह कहता है—"मन शरीरका प्राकृतिक संरक्षक है।" किसी विचार, किसी भयङ्कर रोग या दुर्व्यसनकी कल्पना मनमें जहाँ आयी कि तत्कालही उसका मानसिक चित्र बन जाता है और फिर वही रोग दुर्व्यसन आदिका रूप धारण कर हमारे शरीर पर असर करता है। क्रोधसे हमारी लारमें इतना फर्क पड़ जाता है कि, वह जीवन-विघातक विष हो जाती है। आकस्मिक प्रबल मनोविकार हृदयको इतना दुर्बल कर देते हैं, कि उससे उन्माद रोग होकर अन्तमें मनुष्य मृत्युका ग्रास बन जाता है। भयङ्कर अपराध करनेसे जिसका कलेजा धड़क रहा है उस

पापीके और एक निरपराधी मनुष्यके श्वासादिक पसीने में, विश्लेषण करनेसे वैज्ञानिकों को फ़र्क मालूम हुआ है।

यह बात प्रसिद्ध है कि भयरूपी राक्षस हज़ारों मनुष्योंको खा गया है और इसके विपरीत साहसरूपी देवताने हज़ारों मनुष्योंके प्राण बचाये हैं। घोड़ोंको साधनेमें प्रसिद्धि पाये हुए "रे रे" साहब कहते हैं कि, क्रोधयुक्त शब्दसे घोड़ेपर भी इतना ख़राब असर होता है कि, उसकी नाड़ीकी गति प्रति मिनटमें दस बार तक बढ़ जाती है। अब विचार करना चाहिये कि, इसका मनुष्यपर और विशेष कर बच्चोंपर कितना निकृष्ट परिणाम होता होगा। प्रायः देखा गया है कि, प्रबल मानसिक मनोविकारोंसे कै तक हो जाती है। प्रचण्ड क्रोध अथवा भयसे पाण्डु रोग होता हुआ देखा गया है। भयङ्कर क्रोधसे मृगी रोग होनेके और बहुतोंके मृत्यु-मुखमें पड़ने तकके उदाहरण पाये जाते हैं। एकही रातकी घोर मानसिक व्यथासे जीवनका नाश होता हुआ देखा गया है। दुःख, दीर्घ द्वेष और निरन्तर चिन्तासे बहुत लोग पागल हो गये हैं। रोगके विचार एवं अस्वस्थ मनोवृत्ति ही रोगके घर हैं।

इन बातोंसे जो अति महत्त्वकी बात सिद्ध होती है वह यह है कि, नाना प्रकारकी मानसिक दशाओंका और भिन्न-भिन्न मनोविकारोंका असर शरीरपर अवश्यमेव होता है। इसका विवेचन इस प्रकार हो सकता है—मान लीजिये कोई मनुष्य

असीम क्रोधसे ग्रस्त हुआ। इस मनोविकारके कारण उसके शरीरमें भयङ्कर तूफ़ान उठने लगा। इस तूफ़ानका परिणाम यह होता है कि शरीरको पोषक, संवर्धक और आरोग्य-दायक पसीना, रस और धातु पूर्णतया बिगड़कर हानिकारक एवं विषैले होजाते हैं; अतः उनसे शरीर-पोषण करनेका संवर्द्धन करनेका एवं उसे आरोग्य देनेका कार्य्य नहीं हो सकता; उलटे शरीरका नाश करनेके वे कारण हो जाते हैं। बारंबार क्रोध आनेसे, शरीरके रस धातु एवं पसीना बिगड़कर हानिकारक और ज़हरीले हो जाते हैं। उस हानिकर विषके शरीरमें फैल जानेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है और रोग स्थायी हो जाते हैं। क्रोधके प्रतिकूल प्रीतिका परिणाम शरीरपर कैसा होता है? दूसरोंपर स्नेह भाव रखना, उनका कल्याण चाहना, उनपर प्रेम रखना, उनका भला करनेकी इच्छा रखना आदि सात्विक मनोवृत्तियाँ शरीरके रस और धातुओंको उत्तेजित करके संशोधित करती हैं अर्थात् उन्हें बलवान बनाकर निर्मल कर देती हैं। अतएव उनसे शरीर पोषण करनेका और संवर्धन करनेका कार्य्य अच्छी तरह होने लगता है। इससे शरीरकी सर्व रक्तवाहनियाँ प्रफुल्लित होती हैं; जिससे शरीरमें प्रवाहित होनेवाले लोहूकी, धातुकी एवं शरीर-संवर्धक शक्तिकी गति इतनी तीव्र हो जाती है कि वह विरुद्ध परिणामवाले रोगोंके बीजका नाश करके, शरीरको नीरोगी एवं सुदृढ़ बनाती है।

वैद्यराजजी रोगीके घर जाते हैं। यदि वह उस समय कोई भी औषधि न दें; तोभी वहाँ जाकर रोगी को तसल्ली देते हैं और इससे रोगी कुछ शान्त हुआसा दीख पड़ने लगता है। इसका कारण यह है, कि वैद्यराजका प्रसन्न मुख और आनन्दमय स्वभाव तथा मधुर वार्त्तालाप रोगीपर आरोग्यताकी वर्षा करता है; मानों वैद्यराजजीने अपनी आनन्दपूर्ण एवं आह्लादिक दृष्टिसे अपनी आशा, हिम्मत और धीरजरूपी औषधि उस रोगीको पिलाही दी, जिससे रोगीका मन सुधरता जाता है और वह क्रमश: अच्छा होने लगता है। जिन बातोंसे आशा उत्पन्न होकर मन जितना दृढ़ होता है, आनन्दी और उत्साही होता है तथा निश्चिन्त एवं धैर्यशाली होता है वे बातें शरीरको उतनीही लाभकारी हैं। दृढ़ आशा और अचल हिम्मतको संजीवनी औषधि कहनेमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। उनका मन पर और मनके द्वारा शरीरपर होनेवाला प्रभाव चमत्कारक है। एक रोगी निकट आये हुए मनुष्यसे बोला कि, तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ा आनन्द मालूम हुआ। इस बातमें एक अति महत्त्वका वैज्ञानिक तत्त्व छिपा हुआ है। महात्माओंका दर्शन और उनके शब्द आरोग्यदायक होते हैं। एक मनुष्यके मनसे दूसरे मनुष्यके मनपर अच्छे अथवा बुरे विचार जिसके द्वारा प्रकट किये जाते हैं उस प्रेरणा-शक्तिका अभ्यास आज-कल बड़ाही मनोरञ्जक एवं आश्चर्यकारी हो रहा है। इसके द्वारा

बहुतही आश्चर्यजनक और प्रबल शक्ति उपयोगमें लायी जाती है।

शरीर-व्यवच्छेदन-विद्यामें प्रवीण, अति विख्यात एक वैज्ञानिकने अपनी प्रयोग-शालामें किये हुए प्रयोगसे यह सिद्ध किया है, कि मनुष्यका सारा शरीर, हाड़, माँस, स्नायु एकदम बदलकर उसका रूपान्तर होनेमें पूरा एक वर्ष भी नहीं लगता। मनुष्य-शरीरके कुछ भाग तो १०-१५ दिनमें अथवा मास दो मासमें ही बिलकुल बदल जाते हैं।

एक मित्रने हमसे पूछा कि—"क्या शरीरमें लगे हुए सब रोग आन्तरिक शक्तिके द्वारा पूर्णतया अच्छे हो सकते हैं?" हमने कहा कि हाँ, हो सकते हैं। हमारे विचारानुसार रोगोंको अच्छा करनेका सर्वोत्तम एवं स्वाभाविक नियम यही है। वनस्पति, रसायन, शस्त्र-प्रयोग आदि बाहरी उपचारसे रोग अच्छा करनेकी पद्धति केवल अस्वाभाविक और कृत्रिम है। परन्तु आन्तरिक जीवनशक्ति द्वारा रोग अच्छा करनेकी पद्धति सत्य शास्त्रीय और स्वाभाविक है।

एक जगद्विख्यात् शस्त्र-चिकित्सक भिषग्वर्यका कहना है कि, हमारे रक्त धातुका संवर्धन और पोषण करनेवाला हमारे जीवनका जो आदि तत्त्व है, उस महत्शक्तिकी खोज एवं अध्ययनकी ओर आयुर्वेदज्ञोंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। उनका सारा समय, उनकी सारी विद्वत्ता और उनकी सारी कल्पना इसी बातकी जाँचमें लग रही है कि, शरीर पर जड़

पदार्थोंके क्या-क्या परिणाम होते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि, आयुर्वेद-विशारदोंकी आजतक जितनी उन्नति होनी चाहिये उतनी नहीं हुई। मानसशास्त्रके समान आयुर्वेदकी अति महत्त्वकी और अत्यावश्यक शाखा आरम्भिक एवं अपरिपक्व दशामें पड़ी हुई है, परन्तु उन्नीसवीं सदीकी ज्योति फैली है, मनुष्य-जाति प्रकृतिकी छिपी हुई शक्तियोंकी खोजमें अग्रसर हो रही है। अब चिकित्साशास्त्रमें मानसशास्त्रको मिलाकर उसकी कक्षा बढ़ाये विना काम नहीं चलेगा। मानसिक शक्तिकी सहायतासे अल्प समयमें ही अनेक रोगोंके पूर्णतया अच्छे हो जानेके बहुतसे उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इनमेंसे कितनेही रोग तो ऐसे हैं, जिन्हें औषधि रसायन आदि बाहरी उपचारसे अच्छा करनेकी वर्तमान पद्धतिका अनुसरण करनेवाले वैद्योंने असाध्य ठहरा दिया था। मानसिक शक्तिसे रोग अच्छा करनेकी पद्धति कुछ नवीन नहीं है। सब समयकी धर्म-पुस्तकोंमें इस प्रकारसे रोग अच्छा करनेकी विधि जहाँ-तहाँ लिखी हुई है। मनके द्वारा रोग दूर करनेकी शक्ति जब हममें पहले थी, तो आज क्यों नहीं होगी? निःसन्देह वह शक्ति हममें विद्यमान है। और जिस महत्शक्ति और नियमका प्राचीनकालमें लोग अनुसरण करते थे, उसका जितनाही हम अनुसरण करेंगे उतनीही वह शक्ति हमें प्राप्त होगी।

इस पद्धतिके अनुसार एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको रोगसे

अच्छा कर सकता है; किन्तु इसमें यह आवश्यक है कि, जिसका इलाज किया जाय वह भी दिलसे विश्वास रखता हो। रोगीके विश्वास न करनेसे वैद्यकी बड़ी मिहनतसे भी रोग अच्छा नहीं हो सकता। बहुतसे रोगी आरोग्यता पानेकी लालसासे एक साधुके पास जाते थे। साधु उनसे यही पूछता था कि तुम्हें दृढ़ विश्वास है कि, तुम्हारा रोग मेरे हाथसे अच्छा होगा? इस प्रश्नसे वह साधु उन रोगियोंकी शक्तिको जाग्रत और प्रोत्साहित करता था।

हम ऊपर कह चुके हैं कि, उक्त विधिके अनुसार रोगियों को स्वयं ही वैद्य बनकर अपनी चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु जो रोगी नितान्त अशक्त है, जिसके स्नायु बिल्कुल ही थककर च्युतप्राय हो गये हैं, रोगके कारण जिसका मगज़ बिगड़कर काम करनेके अयोग्य होगया है, उसको कुछ समय तक निरुपाय होकर दूसरेकी सहायता पर ही रहना चाहिये। परन्तु ऐसे रोगीको भी यह स्मरण रखना चाहिये कि अपना रोग निवृत्त करनेकी शक्ति जैसी मुझमें है वैसी अन्य किसीमें भी नहीं है। रोग निवृत्यर्थ अपनी पूर्ण मानसिक शक्तिका असर जितनी जल्दी होसके उतनी जल्दी डालना चाहिये।

किसी प्रसंगमें रोगीके यत्न किये बिना भी वैद्य उसका रोग थोड़ा बहुत अच्छा कर सकता है; परन्तु रोग निर्मूल करके स्थायी आरोग्य लाभ करना हो, तो यह काम स्वयं

ही करना चाहिये। ऐसे अवसर पर आन्तरिक शक्तिको स्पष्टतासे समझानेवाला उसे कोई गुरु मिल जाय तो अति उत्तम है; तोभी अन्तमें रोग निर्मूल करनेके लिये निजका यत्नही आवश्यक है। सब रोग और उनकी व्यथा ईश्वरीय नियम भङ्ग करनेका फल है—चाहे वह नियम हमने जान-बूझकर भङ्ग किया हो अथवा अनजानसे। जब तक पाप-प्रवृत्ति बनी रहती है, तभी तक व्याधि और क्लेश रहते हैं—यह ईश्वरीय नियम है।

ईश्वरीय नियमका भङ्ग करना चाहे वह धार्मिक हो अथवा व्यवहारिक हो, पाप ही है। जिस समय मनुष्य ईश्वरीय नियमका अनुयायी बनता है और उसके अनुसार आचरण करने लगता है, उस समय उसकी आधि-व्याधि भाग जाती है और पिछले पाप या नियम भङ्ग करनेका कुछ असर भीतर बाकी हो तोभी कारण दूर हो जाता है, इससे पहले पापका असर बढ़ने नहीं पाता। और जब सच्ची शक्तियाँ अपना काम करने लगती हैं, तब पिछले अपराधका बाक़ी असर भी मिट जाता है। मनुष्यको चाहिये कि वह इस बातको खूब समझ ले और मनमें बिठाले कि, मैं और वह अनन्त चैतन्य, जो सब प्राणियोंका जीवन है, वास्तवमें एक ही हैं। ऐसा विश्वास और निश्चय होनेसेही हम अपने जीवन-सम्बन्धी नियमोंको पूर्णतया पालन कर सकते हैं। जहाँ हम उन नियमोंके पूरे अनुयायी बने कि, जीवन-शक्ति हमारे शरीरमें

इतनी प्रबलतासे प्रवाहित होने लगेगी कि, हमारे शरीरके तमाम रोग उसमें बह जावेंगे और हमारा शरीर सुदृढ़ और नीरोगी बन जावेगा।

जब हमें अपने और परमात्माके एकत्वका ज्ञान हो जायगा जब हम अपने आपको दिव्य मनुष्य मानेंगे, जब हम अपने आपको केवल व्याधियोंके स्थानभूत जड़ शरीरधारी नहीं मानेंगे, जब हम अपने आपको चैतन्य शरीर मानने लग जावेंगे, जब हमें इस बातका पूर्ण ज्ञान हो जावेगा कि जिस घरमें हम रहते हैं उसके बनाने वाले हम हैं, इससे हम उसके स्वामी हैं; तो त्रिकालमें भी हम घरको अपना स्वामी न समझेंगे और जड़ तत्त्वोंसे एवं श्रेष्ठ पदार्थोंकी शक्तिसे न डरेंगे। हम अपनी अज्ञान अवस्थामें शरीरको इनका दास समझनेके कारण उसकी हानि कर लेते हैं, वैसी दशा अब हमारी न होगी। क्योंकि जब हम उससे डरनेके बदले उनपर अपना आधिपत्य मानेंगे, तब हम उनपर प्रेम करने लगेंगे। और जब हम किसी पर प्रेम करने लगते हैं, तो हमको उससे भय होने की कुछ भी आशङ्का नहीं रहती।

इस संसारमें ऐसे सहस्रों स्त्री-पुरुष हैं, जो शरीरसे अत्यन्त दुर्बल और जो अनेक व्याधियोंसे ग्रस्त हैं। वे खूब मज़बूत और नीरोग हो सकते हैं, यदि वे अपने रोग निवारणका काम सर्वशक्तिमान परमात्माके द्वारा करें। ऐसे लोगोंको हम कहेंगे कि अपने आपको ईश्वरीय प्रवाहसे

विमुख मत करो। अपना अन्तःकरण ईश्वरीय प्रवाहकी ओर खोलकर उसका आह्वान करो, जिससे वह दैवी चैतन्य तुम्हारे शरीरकी रगरगमें इतने ज़ोरसे प्रवाहित होने लगे कि, तुम्हारे सब रोग उस प्रवाहमें समूल बह जावें और तुम्हारा शरीर स्वच्छ और निरामय हो जावे। एक महात्माने कहा है कि ब्रह्मज्ञानसे दो तरहके लाभ होते हैं—एक तो शरीर निरोगी होता है और दूसरे अक्षय जीवन प्राप्त होता है।

हममें ईश्वरीय शक्ति गुप्त रूपसे वास करती है, निःसीम जीवनरूपी परमात्मासे हमारी एकता है आदि बातोंको जब तुम जान लोगे, तब तुम्हारे शरीरकी आधि-व्याधि, अस्वस्थता अशक्तता सम्पूर्णतया नष्ट होकर आरोग्य,स्वास्थ्य और बल तुम्हारे शरीरमें अपना अटल आधिपत्य जमा लेंगे। तुम स्वयं जितने आरोग्य-सम्पन्न, स्वस्थ और सुदृढ़ रहोगे; तो जिन-जिन से तुम्हारा काम पड़ेगा, उन्हें उतनाही आरोग्य, स्वास्थ्य और बल दे सकोगे; क्योंकि जिस प्रकार रोग स्पर्शसे होता है, उसी प्रकार आरोग्यता भी स्पर्शसे होती है।

कितनेही लोग कहते हैं कि "हाँ ये सब तत्त्व सच्चे हैं परन्तु हमारे शरीरमें लगे हुए रोगोंको ये कैसे आराम कर सकते हैं?" इन लोगोंसे हमारा कहना है कि इन सब तत्त्वोंका समझाना हमारा काम है, परन्तु इनको अपने नित्याचरणमें कैसे, कहाँ और कब लाना यह ख़ास तुम्हारा काम है।

प्रथम यह कहना आवश्यक है कि, पूर्ण आरोग्यताके

विचार अपने शरीरमें संचारित करनेसे शरीरको आरोग्यदायक शक्तिको उत्तेजन मिलता है और उसका परिणाम पूर्ण आरोग्य सम्पादन करनेवाला होता है—यह बात ठीक है। परन्तु आरोग्यता के विषयमें दृढ़भाव रखनेकी अपेक्षा निरामय ईश्वरीय चैतन्यसे होनेवाले अपने एकत्वकी प्रतीतिसे हमें बहुत शीघ्र आरोग्य प्राप्त होता है। इसका कारण स्पष्ट है। उस निःसीम चैतन्यको रोग छू तक नहीं सकता—उसकी रुग्णावस्था होना असम्भव है। वह रोगातीत चैतन्य और तुम्हारे शरीरका चैतन्य एकही है। इस बातका भरोसा करके उस निरामय चैतन्यका प्रवाह तुम अपने शरीरमें बेधड़क संचारित होने दोगी, तो तुम्हारी आधि-व्याधि सम्पूर्णतया नष्ट हो जावेगी।

इस रोगातीत ईश्वरीय चैतन्यसे जिनको ऐक्य-प्रतीति हो गयी है, उनके रोग भी स्थायीरूपसे दूर हो गये हैं। समयका अधिक या कम लगना, अपनी प्रतीतिकी दृढ़ता और शिथिलता पर मुनहसर है। स्मरण रहे कि ऐक्य-प्रतीति एवं रोग दूर करनेकी इच्छामें भय, संशय और घबराहटका प्रवेश न होने देना चाहिये ; बल्कि दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि शान्ति, स्वस्थता और धैर्य अवश्य प्राप्त होंगे।

निम्नलिखित भावनासे बहुतोंको अपनी व्याधि निवारण करनेमें बहुत सहायता मिलेगी और कितनेही तो सम्पूर्णतया नीरोग हो जावेंगे। यह भावना करके प्रथम मनको

शान्त बनाना चाहिये और अन्तःकरणकी प्रवृत्तिको सब जीवोंपर प्रेम करने की ओर लगाना चाहिये ; फिर नीचे लिखे हुए विचारोंका मनन करना चाहिये ।—

सब जीवोंके आधार परमात्मासे मेरा एकत्व है—यही मेरे जीवनका जीवन है; अतएव मैं चैतन्य स्वरूपही हूँ । मेरी प्रकृति दिव्य प्रकृति है। उसके सत्य स्वरूपको रोग होना असम्भव है, परन्तु मेरे इस अनित्य जड़ शरीरमें रोग लगा हुआ है। अगाध चैतन्यका प्रवाह मेरे शरीरमें प्रवेश हो, इस इच्छासे मैं अपने सारे शरीरके द्वारोंको उस प्रवाहकी ओर खोलता हूँ। यह प्रवाह जितने ज़ोरसे शरीरमें प्रवाहित होगा, उतनेही शीघ्र रोग अच्छे होंगे। उक्त वचन केवल जिह्वाहो से न कहना चाहिये, वरन अपनी बुद्धि और श्रद्धाको भी वैसी ही बनाना चाहिये। इस बातका विश्वास तुम्हारी अन्तरात्माको जहाँ हुआ कि, तुरन्तही तुम्हारे शरीरमें प्रफुल्लता और स्फूर्ति वास करने लगेगी—तुम्हारे रोग अच्छे होने लगेंगे। इतनाही नहीं,वरन स्थायी रूपसे अच्छे होने लगेंगे। परन्तु इस बात पर तुम पूरा विश्वास रक्खो और पूरी सावधानी इस बातकी रक्खो कि, इस विश्वासमें किसी प्रकारसे चलविचल न हो। कितने ही लोगों का ऐसा विचार होता है कि जो कुछ हम चाहते हैं वह न होगा; इसलिये उनका शुभपर विश्वास नहीं होता, परन्तु अशुभपर होता है। यही कारण है कि वे सदा व्याधिग्रस्त रहते हैं। हमारे ऊपर कहे अनुसार जिसकी मनकी प्रवृत्ति एवं दृढ़

भाव पूर्णतया हो जायगा, उसे इतनी जल्दी आरोग्य प्राप्तहोगा कि उसका उसेही आश्चर्य होगा। परन्तु इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है, क्योंकि रोग निवारण करनेवाली शक्तिही दैवी-शक्ति है।

शरीरके किसी विशेष भागमें कोई रोग हो तो उक्त भाव-नाको सारे शरीरके लिये करते हुए उस विशेष भागके लिये विशेष रूपसे करना चाहिये। उस विशेष भागके लिये तुम उस प्रकारकी भावना करो। ऐसा करने से शरीरके उस विशेष भागकी जीवन-शक्तिको ज़ोर और प्रफुल्लता प्राप्त होगी और वह रोग अच्छा होने लगेगा। परन्तु याद रक्खो, यदि तुम ईश्वरका अक्षय नियम जानकर उसपर आचरण नहीं करोगे, तो अवश्यमेव फिर रोगके पञ्जे में फँसोगे। नियमका उल्लङ्घन ही रोगका कारण है। जब कार्यका नाश करना हो, तो कारण का ही नाश कर देना उत्तम है; अतएव नियम भङ्ग नहीं करना चाहिये। उसको भङ्ग न करनेसे रोग भी नहीं होगा।

हमने जिस भावना और ऐक्य प्रतीतिका विचार किया, उसके द्वारा रोगी शरीर नीरोग हो जाते हैं, नीरोगी शरीरको उससे विशेष उत्साह, विशेष शक्ति एवं विशेष प्रफुल्लता प्राप्त होती है।

औषधि, शस्त्रप्रयोग आदि बाहरी उपचारसे कुछ भी सहायता लिये बिना, सब देशोंमें और सब समय, अनेक रोगि-

योंको रोग केवल मनकी शक्तिसे अच्छा करनेके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं । रोग अच्छा करनेकी इस पद्धतिको भिन्न-भिन्न स्थानोंमें, भिन्न-भिन्न समयमें, भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं ; तोभी इस पद्धतिका मूल तत्त्व एकही है ।

जब पूर्व कालके लोगोंमें इस पद्धतिसे रोग अच्छा करनेकी शक्ति थी, तब वही शक्ति उनके वंशज हममें क्यों न होनी चाहिये ? सृष्टिका नियम जैसा पहले था वैसाही अब है—उसमें कुछ भी फ़र्क़ नहीं हुआ है । परन्तु अब बहुत कम लोगोंको उसके नियमका रहस्य समझमें आता है । यही कारण है कि वर्तमान समयमें हम लोगोंमें इस शक्तिका अभाव है । परन्तु अब भी जो लोग इस शक्तिके मर्मको भली भाँति समझ लेंगे, उन्हें यह शक्ति ज़रूर प्राप्त होगी ।

आजतक जिन-जिनको यह शक्ति प्राप्त हुई है, उन्होंने उसके मर्मको पूर्णतया जानकर उसे प्राप्त किया । अपनी प्राप्त की हुई वह विद्या उन्होंने दूसरोंको दे रक्खी है । उनकी सत्ता कितनी थी ? उनका अतुल प्रताप कितना था ? यह उनके उच्चारित प्रत्येक शब्दसे एवं उनके किये हुए प्रत्येक कार्यसे मालूम होता है । बहुतसे रोग और उनसे भोगी जानेवाली सारी यातनाओंके मूलकारण मनकी बिगड़ी हुई दशा एवं दुष्ट मनोविकार हैं—ये बातें अब हमारे ध्यानमें आने लगी हैं और इन बातोंमें हमारा अधिकाधिक विश्वास होता जाता है ।

जहाँ हमारा दृढ़ विश्वास हुआ कि अमुक काम पर हमारी सत्ता अवश्य चले और उससे त्रिकालमें भी हमारा नुकसान न हो, वहाँ सचमुच हमारी सत्ता उस कामपर चलेगी और उससे हमें किसी प्रकारका नुकसान कभी नहीं पहुँचेगा।

हम अपने शरीरमें किसी रोगके लिये जब जगह बनाते हैं, तब वह रोग वहाँ आकर अपना अधिकार जमाता है। हम जिसको ज़रा भी नहीं चाहते वह दुर्दशा हमें प्राप्त होती है, इसका कारण यह है कि उसको अनुकूल स्थिति बनाकर हम उसे बुलाते हैं।

जब किसी सुदशा या दुर्दशामें हम पड़ें, तब उसका कारण बाहर न ढूँढ़कर अपने अन्तरमें ही ढूँढ़ना अच्छा है। इससे उसका पता हमें शीघ्रही लग जावेगा और हम उसे वहाँसे निकालनेमें समर्थ होंगे। हमें अपनी इच्छानुकूल स्थिति प्राप्त हो और सुदशा तथा दुर्दशापर हमारा पूर्ण अधिकार रहे—इन स्वभाव-प्राप्त अधिकारोंको हम अपनी अज्ञानताके कारण खो देते हैं और उलटे हम अपनी स्थितिके दास बन जाते हैं।

हम वेगसे चलनेवाली वायुसे डरते हैं। हमें यह भय रहता है कि, इसके कारण हमें जुकाम अथवा बुखार हो जावेगा। भला यह भय क्यों? वायु तो हमारा जीवन है, हमारे अशुद्ध रक्तको शुद्ध करनेवाली वही है, फिर उससे हमें कैसे हानि पहुँच सकती है? हम स्वयंही आगे होकर,

वायुको जितनी हानि अपने ऊपर करने देंगे, उतनीही वह करेगी। उपादान कारण और निमित्त कारणका फ़र्क़ ध्यान देने योग्य है। वायुका झोंका हमारे शरीर पर लग जावे और उससे हमें ज़ुकाम अथवा बुख़ार हो जावे, तो समझना चाहिये कि वायुका झोंका ज़ुकाम अथवा ज्वरका उपादान कारण नहीं है; वह बहुत होगा तो निमित्त कारणमात्र होगा।

प्रचण्ड वायु चल रही है, उस जगह दो मनुष्य बैठे हुए हैं। एकको उससे तकलीफ़ होती है, मगर दूसरेको ज़रा भी तकलीफ़ नहीं होती, वरन वह अलौकिक आनन्द पा रहा है। पहला मनुष्य अपनी दशाका दास है, अतएव निरन्तर ही उसके मनमें यह भय लगा रहता है कि वायुसे कुछ न कुछ हानि अवश्य होगी। इस प्रकारका भय करके उस भयको प्रवेश करनेके लिये मानो वह अपने मनोमन्दिरका द्वार खोल देता है और उसे बुलाता है। दूसरा मनुष्य ऐसा मानता है कि जो स्थिति मुझे प्राप्त हुई है उसपर मेरा पूर्ण आधिपत्य है। मैं परिस्थितिका स्वामी हूँ। उसे वायुके झोंकेकी कुछ परवा नहीं है। वह उससे अनुकूलता प्रकट करता है, इससे वायु उसकी मित्र हो जाती है और उसे दुःख नहीं देती, वरन् बहुत सुख देती है। उसी झोंकेके द्वारा उसे बाहरसे आनेवाली स्वच्छ और ताज़ी हवा मिलती है और इस तरह अधिक ठण्ड और प्रचण्ड वायु सहन करनेकी शक्ति उसे प्राप्त हो जाती

है। यदि वायु ही जुकाम अथवा ज्वरका कारण होती, तो उस कारणका कार्य्य दोनोंमें एकसा होता; परन्तु ऐसा नहीं होता; अतः वायु उस पहले मनुष्यकी बीमारीका कारण नहीं हो सकती। उन दोनोंने जैसी-जैसी अपने मनकी स्थिति बनायी, उसके अनुसार एकको वायुसे बीमारी हुई और दूसरेने नीरोगताका सुख अनुभव किया। लोग सब दोष बेचारी वायुपर मढ़ते हैं। यह हमारी कितनी अज्ञानता है? इन लोगोंको अपनी कमज़ोरी नहीं सूझती, उलटे ये दूसरेको दोष देते हैं। ये अवस्थाके स्वामी बननेके बदले दास बने रहते हैं, इसीसे ऐसा करते हैं। पाठको! यह कितनी भयङ्कर दशा है, ज़रा सोचिये तो सही। मनुष्य ईश्वरका प्रतिबिम्ब है, ईश्वरीय चैतन्य एवं शक्ति उसे प्राप्त हुई है। अतएव वह संसारके सब पदार्थोंका एवं नियमोंका स्वामी है। तिस पर भी आरोग्यप्रद शुद्ध वायुके झोंकेसे घबरा जाना और उससे लगी हुई सर्दीसे मृत्यु तकका भय करना, मनुष्यके लिये बहुतही शोचनीय और लज्जास्पद है। वायुसे हानि न पहुँचे, इसका उत्तम उपाय अपनी आन्तरिक दशा सुधारना है। मनको निरोग रखते हुए वायुसे भय न करना चाहिये। याद रक्खो कि वायुमें हमारा भला बुरा करनेकी शक्ति नहीं है। हम अपनी भलाई-बुराई करनेकी शक्ति जब उसे देते हैं, तभी उसे वह प्राप्त होती है। अतएव हमको चाहिये कि वायुको वैसीही शक्ति प्रदान करें जो हमारे अनुकूल हो—हमें सुखदायिनी हो—

आरोग्य देनेवाली हो। उस प्रकार मनकी प्रवृत्ति पूरे तौर से करके वायुमें थोड़ी देर तक बैठनेकी आदत डालनी चाहिये। स्मरण रहे कि, यह आदत एकदम न बढ़ाकर क्रमशः बढ़ानी चाहिये। परन्तु जिनकी प्रकृति बहुतही कमज़ोर है यानी जिन्हें ज़रासी वायु लगनेसे सिर-दर्द करने लगता है, या ज्वर चढ़ने लगता है, उन्हें चाहिये कि वे हमारे उपयुक्त कथनसे कुछ विशेष ख़्याल एवं सावधानी रक्खें। संसारमें आजतक जितने महापुरुष एवं महात्मा हो गये हैं, उन सबने सृष्टिके सब नियमोंपर अपनी सत्ता रक्खी थी अर्थात् सृष्टिके नियम उनकी आज्ञामें वश थे। इसका कारण क्या ? वे भी मनुष्य ही थे और हम भी मनुष्य ही हैं; जो कुछ उन्होंने किया, वह आज नहीं तो कल हम भी उन्हींकी तरह नियमका अनुसरण करके कर सकेंगे। यदि यह बात सच हो, तो क्यों हम सृष्ट पदार्थ एवं शक्तिके आगे अपना मस्तक झुकावें ? क्यों हम उसके दास बनें ? हमको चाहिये कि हम अपने सत्य स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करें, जिससे हमें महात्माओंके समान सत्ता प्राप्त हो और उन्हींके समान हमारी आज्ञा चले। प्रत्येक मनुष्यका जीवन कारण और उसके कार्य्योंकी श्रेणी है। अतः कारणके बिना कार्य्य, जिसे व्यवहारमें प्रारब्ध कहते हैं, कुछ भी नहीं है। जहाँ कहीं हमको अचानक कोई संकट प्राप्त हुआ कि हम कहने लगते हैं—"क्या करें, हमारा नसीब ही ऐसा है" पर यह कहना बड़ी भूल है। हम पर

आनेवाली विपत्तियोंके असली कारण हमारे भीतर हैं। हमें चाहिये कि उन्हें वहाँ से निकाल दें, हम उनके विपरीत कारणोंको अपने अन्त:करणमें स्थान दें, जिससे हमारे फूटे हुए नसीबके बदले अच्छा नसीब प्रकट हो। यही नियम शरीरकी, मनकी एवं समग्र मानव-जीवनकी प्रत्येक स्थितिके लिये है। जोजो बुरी स्थितियाँ हमें प्राप्त हुई हैं, उनके लाने वाले हम स्वयंही हैं; अलबत्ता यह बात दूसरी है कि हमने उन्हें जान-बूझकर अपने सिर पर लिया हो अथवा अज्ञानतासे, परन्तु बिना ऐसा किये कभी ख़राब स्थिति हमें प्राप्त नहीं हो सकती। हमारा यह कहना बहुत लोगोंको अमान्य होगा, परन्तु वे विचार-शक्तिका, स्वस्थ एवं शान्त चित्तसे, विचार करेंगे; तो उन्हें उसकी प्रबलता और श्रेष्ठताका, आपसे आप, ज्ञान हो जायगा। जब उन्हें विचार-शक्तिकी सूक्ष्मताका पूरा ज्ञान होजायगा, तब निश्चयही उन्हें हमारी इस बातपर विश्वास हो जायगा।

जो स्थिति हमें प्राप्त हुई है, उसे सुखमय अथवा दुःखमय मानना सर्वथा हमारे हाथमें है। इस बातका दिग्दर्शन हम ऊपर करा चुके हैं। जो लोग यह चाहते हैं कि, संसारकी किसी भी घटनासे दुःख न पहुँचे; उन्हें चाहिये कि वे अपनी असली बुनियादको खूब पक्की करलें। हम समस्त जगत् पर अपनी सत्ता चला सकते हैं, ऐसी दृढ़ता उनको अपने मनमें ज़रूर कर लेनी चाहिये, क्योंकि हमारी बुनियाद जितनी

दृढ़ और मज़बूत होगी, उतनाही दृढ़ और मज़बूत हमारा शरीर और मन होगा; उस अगाध शक्तिमय ईश्वरसे जितना हम अपना ऐक्य करेंगे, हमारी बुनियाद उतनीही मज़बूत होगी।

पर यह बात न भूलना चाहिये कि, अगर हमारी बुनियादही कमज़ोर होगी; तो संसारकी तुच्छ घटना भी हमें नीचा दिखावेगी—तकलीफ देगी और हमारा चाहे जैसा नुक़सान करनेमें कोई कसर न रक्खेगी और सारी तक़लीफें हमें बिना चूँ किये सहनी पड़ेंगी। जगत्‌की सब घटनाएँ कुछ न कुछ कल्याणकारी हैं; तोभी हम उन पर व्यर्थ दोष लगाते हैं; यह बात बहुत अनुचित है।

जिसका मन द्वेषरहित एवं निर्दोष है, उसे सारा जगत निर्दोष ही दीखेगा; परन्तु जिसका मन दुर्बल हो गया है उसे चारों ओर दुर्बलता ही दुर्बलता दृष्टिगत होती है। मेरा नसीब ही फूटा हुआ है, यही ख़राब, वही ख़राब, सृष्टिकी रचना जैसी चाहिये वैसी ईश्वरने नहीं की आदि प्रकारके निराशा-युक्त वचन जो अपने मुँहसे निकाला करता है उसके मनको दुर्बल—अत्यन्त दुर्बल समझो। उसके इस प्रकार अपने भाग्यको कोसने और शिकायत करनेसे उसकी मानसिक व्यथा साफ़-साफ़ प्रकट होती है।

इसके विरुद्ध जिसके मनमें दुर्बलता-रूपी राक्षसीने वास नहीं किया है—जिसके मनपर बाहरी सुन्दर और परिपूर्ण

दृष्टिका प्रतिबिम्ब जैसेका तैसा पड़ता है, उसके लिये इस संसारमें असन्तोष नाममात्रको भी नहीं है। मनकी दुर्बलतासे हताश मनुष्यको और इस मनुष्यकी स्थितिमें ज़मीन आस्मानका फ़र्क़ है। प्रिय पाठको! तुम अपने मनकी दुर्बलताको निकाल डालो; फिर तुम्हें यह संसार, जोकि दोषोंसे भरा हुआ दिखाई देता है, परिपूर्ण और एकदम निर्दोष दिखाई देने लगेगा। जिस सुन्दरता का तुम्हें स्वप्नमें भी अनुभव नहीं होता, उसका तुम्हें साक्षात्कार होने लगेगा और फिर कविका यह वचन कि 'स्वर्ग, नन्दनवन और दिव्यलोक और कहीं नहीं है सब यहीं है,' तुम भी मानने लग जाओगे। "जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि"का अर्थ यही है कि साधारण मनुष्यको सूर्यके प्रकाशसे जो बातें नहीं दीखती हैं, वे बातें इस जगत्में कविको दीखती हैं, क्योंकि कविका मन स्वयं प्रकाशित रहता है। कविका तेज सूर्यको तेज देनेवाले परमात्माका तेज है। तब सच्चे कविके सामने एवं सच्चे महात्माके सामने सूर्य-प्रकाशको अथवा स्वतः सूर्यकी क्या गिन्ती? सच्चे कवियोंमेंसे अति विख्यात् कवि शेक्सपियरके एक नाटकमें एक पात्र कहता है,—"मित्र ब्रूट्स! हम जो दूसरेके हाथके खिलौने एवं दास बनकर रहते हैं, यह दोष हमारे ग्रहोंका नहीं है, वरन हमारा अपनाही है।" शेक्सपियरका जीवन-क्रम उसके उपर्युक्त वचनके अनुसारही था। भगवान् श्रीकृष्णने गीता में कहा है कि 'संशयात्मा विनश्यति' हमारे

संशयही हमारे विघातक हैं। जिस कार्यमें संशय हो जाता है फिर उसको करनेमें धैर्य नहीं रहता। संशयसे हम उन बातोंको छोड़ देते हैं, जिनके करनेमें कठिनाई नहीं पड़ती, वरन् यश प्राप्त होता है।

"भयके पीछे ब्रह्मराक्षस पड़ा हुआ है," यह लोकोक्ति सत्य है। यदि तुम बीमारीसे डरोगे तो तुम्हें बीमारी अवश्यमेव हो जावेगी, यदि तुम दरिद्रतासे डरोगे तो दरिद्रता हाथ धोकर तुम्हारे पीछे पड़ेगी। यदि तुम मृत्युसे भय करोगे, तो समझ लो कि यम-दूतके आनेमें कुछ भी विलम्ब नहीं है। इसीसे कहते हैं कि, तुम अपना भला चाहते हो तो किसीसे भय मत खाओ। अभय होनेका उत्तम उपाय आत्मज्ञान है यानी मैं कौन हूँ, मेरा सत्य स्वरूप क्या है, यह जानना उत्तम उपाय है। संस्कृत कवियोंने चिन्ताको चितासे अधिक भयङ्कर बताया है; क्योंकि चिता तो मृतकको जलाती है, परन्तु चिन्ता जीवितको ही जलाया करती है।

जिसके मनमें भय रहता है उसमें दृढ़ श्रद्धा तो टिकही नहीं सकती; क्योंकि इन दोनोंमें परस्पर वैमनस्य है। किसी भी मनुष्यके भयका परिमाण बताओ, मैं तुरन्त कह दूँगा कि वह मनुष्य कितना भावुक और श्रद्धालु है। चिड़चिड़ापन और दुष्ट मनोविकार जैसे घातक शत्रु हैं, वैसाही भय भी है; अतः प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि भयका प्रवेश अपने मनमें न होने दे।

हम अपने मनमें भयको स्थान देकर, मानो सब अनिष्टोंको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। भयके बदले धैर्य, चिन्तन हमारे मनमें वास करने लगे; तो निश्चयही हमें अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त हो जावेगी।

एक समय महामारी बग़दाद शहरको जाती हुई किसी पथिकसे मिली। पथिकने उससे पूछा कि इस वक्त तुम कितने मनुष्योंकी बलि लोगी। उसने उत्तर दिया—'पाँच हज़ार मनुष्योंकी।' कुछ दिनोंके बाद वही महामारी उसी पथिकसे फिर मिली, तब पथिकने पूछा कि 'क्यों कितने मनुष्योंकी बलि ली?' उसने उत्तर दिया कि 'पचास हज़ारकी'; तब उस पथिकने पूछा कि तुमने पाँच हज़ार कहकर पचास हज़ारकी बलि क्यों ली? उसने उत्तर दिया,—"मैंने ठीक पांच ही हज़ारकी बलि ली है, शेष सब भयसे ही मरगये।"

भयसे स्नायुकी शक्तिका ह्रास होता है और कभी-कभी तो इसके कारण स्नायु बिलकुलही लटक जाते हैं, रक्त-वाहिनी नसें कमजोर हो जाती हैं और सारी जीवन-शक्ति मन्द पड़ जाती है। भयसे कभी-कभी सारा शरीर ऐसा सूख जाता है, कि उसका कोई भी अवयव हिल नहीं सकता।

जिस अनिष्ट बातका हम भय करते हैं, उसको केवल भयसे ही हम अपनीही ओर आकर्षित करते हैं। इतनाही नहीं, बल्कि अपने इष्ट मित्रोंकी ओर भी उसे आकर्षित करानेमें हम सहायक होते हैं। हमारी विचार-रूपी शक्ति

जितनी प्रबल होगी और इष्टमित्र जितने नाजुक प्रकृतिके होंगे, उतनाही हमारे विचारोंका असर उनकी कोमल प्रकृतिपर होकर, हमारी ओरका अनिष्ट उनकी ओर जावेगा। अतएव ऐसे भयपूर्ण विचारोंसे हम केवल अपनाही अनिष्ट नहीं करते हैं, वरन् अपने मित्रोंका अनिष्ट करनेका टीका भी हमारे सिर लगता है। बड़े मनुष्यके मनपर बाहरी विचारोंका असर जितना होता है, उससे बहुत भारी असर छोटे बच्चोंके कोमल मनपर होता है। क्योंकि छोटे बच्चे बाहरी पदार्थोंका प्रतिबिम्ब अपने मनपर शीघ्र जमा लेते हैं और ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जाते हैं, त्यों त्यों बाहरी विचारोंका परिणाम भी प्रबल होता जाता है। हमारी मानसिक स्थिति का अच्छा या बुरा परिणाम हमारे इष्टमित्रोंपर और हमारे बालबच्चोंपर होता है—यह बात पूर्णतया जानकर हमें चाहिये कि अपने मनोभावोंको सदा अपनी ऊंची स्थितिमें रक्खें। विशेषकर गर्भिणी स्त्रियोंको तो भय, चिन्ता, क्रोध आदि मनोविकारोंको अपने मनमें फटकने तक नहीं देना चाहिये, क्योंकि इससे गर्भस्थित बच्चेपर बुरा असर होता है। अतएव माता-पिताको इस बातको पूरी सावधानी रखनी चाहिये कि, उनके बाल-बच्चोंपर इन मनोविकारोंका ख़राब असर न हो। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि, लड़कोंकी आवश्यकतासे अधिक चिन्ता रखनेसे, चिन्ताके विचार अज्ञात भावसे उनके मनमें प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकारकी आवश्यकतासे अधिक चिन्ता

रखनेवाले मातापिता बिलकुल चिन्ता न रखनेवाले माता पिताकी पंक्तिमें आ जाते हैं। हमारे बच्चेको क्या होगा? इस प्रकारके भयके विचार माता-पिता अपने मनमें रखकर, कभी न आनेवाले संकटोंको अपने लड़कोंकी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इस प्रकारके बहुतसे उदाहरण उपलब्ध होते हैं। बहुधा माता-पिताको ऐसा भय बिना किसी कारणके हो जाता है या शायद ऐसा भी कोई कारण हो कि कोई लड़का मूर्ख निकले; बीमार हो तोभी भय न खाते हुए माता-पिताको अपने मनमें यह सोचना चाहिये कि वह लड़का बुद्धिमान होगा, वह कभी बीमार न होगा, उसकी आरोग्यता और बल बढ़ेगा।

हमारे परिचित एक नवयुवकको अफीम खानेका दुर्व्यसन पड़ा हुआ था। उस युवकपर हृदयसे स्नेह रखनेवाली उसकी माता और दादी मौजूद थीं। इन दोनोंको इस युवकका यह व्यसन बहुत बुरा लगता था। वे चाहती थीं कि इसका यह दुर्व्यसन छूट जाय। उस युवकने जब देखा कि मेरा यह दुर्व्यसन मेरी माता और दादीको बिलकुल अच्छा नहीं लगता; तब उसने इसे छोड़नेका दृढ़ निश्चय किया; परन्तु यह युवक निर्बल प्रकृतिका था। दूसरेके विचारोंका असर उसके मनपर खूब होता था। उस युवकने अपना दुर्व्यसन त्यागनेका विचार इन दोनोंके सामने प्रकट किया। वे उसे धैर्य प्रदान करनेके बदले हतोत्साह करने लगीं। अमुकको अमुक व्यसन था। उसने उसे छोड़नेका निश्चय किया, परन्तु नहीं छोड़

सका ; अन्तमें उसको उस दुर्व्यसनके कारणही मृत्यु हुई। इस प्रकारके हतोत्साही, भयपूर्ण और चिन्तामय विचारोंकी लहरें उसके मनमें उठने लगीं। इसका परिणाम यह हुआ कि, उस युवकको अपना निश्चय ढीला मालूम होने लगा। उसने पहले जो हिम्मत बाँधी थी, वह क्रमशः नष्ट होने लगी। अन्तको उसने समझा कि प्राण रहते इस दुर्व्यसनका छूटना कठिनही नहीं, असम्भव है। अब सुज्ञजनो! आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि, इन दोनों स्त्रियोंके दुर्बल मानसिक विचारोंका परिणाम उस युवकके लिये कितना हानिकारक हुआ। यद्यपि ये दोनों स्त्रियाँ उसपर हार्दिक स्नेह रखती थीं—उसका हर तरहसे हित चाहती थीं ; परन्तु इन बेचारियोंको विचार-शक्तिकी प्रबलताका कुछ भी ज्ञान नहीं था; इससे इन्होंने आशान्वित एवं साहसिक विचारोंके द्वारा उस युवकके निश्चयको दृढ़ करनेके बदले, अपने हताश विचारोंसे उसके धैर्यको नष्ट किया। उसका मन दुर्व्यसनके कारण पहलेसे दुर्बल तो हो ही रहा था, अब इन दोनों स्त्रियोंके निर्बल विचारोंने उसे और भी दुर्बल कर दिया। भला, ऐसी दशामें उस युवकको अपने दुर्व्यसन-रूपी शत्रुपर जय प्राप्त करनेकी आशा कैसे हो सकती है? भय, चिन्ता आदि दुष्ट मनोविकार छोटे-बड़े सबको एक समान हानिकारक हैं। अतएव प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि इनका प्रवेश अपने मनमें तनिक भी न होने दे। भयसे जीवन-शक्तिकी गति बहुतही मन्द हो जाती है। भयदायक

विचारोंसे, चिन्तामय ख़यालोंसे, शरीर मिट्टीमें मिल जाता है। इनके सिवा शरीरको धूलमें मिलानेवाले काम, क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। इन भिन्न-भिन्न मनोविकारोंसे भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। जो मनुष्य सदाचारी है यानी जो सृष्टिके सब श्रेष्ठ नियमोंका अनुसरण करता है उसके मनमें आनन्द, समृद्धि और आरोग्य वास करते हैं। इसीसे एक प्राचीन हिन्दू दार्शनिकने कहा है—"सदाचारसे जीवनकी प्राप्ति होती है, दुराचार मृत्युके मुखमें ढकेलता है। अपने जीवनरूपी मन्दिरको सुन्दर एवं भव्य बनाना अथवा उसे बिगाड़कर मिट्टी में मिला देना अपने अधीन है।" एक दिन ऐसा आवेगा जब सब लोग इस सच बातको अच्छी तरह समझेंगे; किन्तु अभी अज्ञानता लोगोंका पिण्ड नहीं छोड़ती है; इससे वे इसका अनुभव नहीं करते हैं और ऊपर कहे अनुसार मनोविकारोंसे अनेक मनुष्य अकालही में कराल कालके हस्तगत होते हुए नित्यप्रति देखे जाते हैं। ईश्वरनिर्मित आत्माका सुन्दर और भव्य निवास-स्थान शरीर है। वह शरीर—भवन—गुलज़ार होनेके बदले अज्ञानता-रूपी बेपरवाहीसे उजाड़ हो रहा है।

विचारशक्तिके कार्योंका जिसने भली भाँति मनन किया है वह हर मनुष्यकी आवाज़, चाल-ढाल एवं चेहरेके भावसे उसके मनकी स्थिति ठीक-ठीक बता सकता है; अथवा उसे किसीके मनकी दशा कह दी जाय, तो वह उस मनुष्यकी आवाज़, चाल-ढाल और चेहरेका भाव वर्णन करके, यह भी कह

देगा कि उसके शरीरमें फलाना रोग है। सब प्राणियोंके शरीरको तीन अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं,—प्रथम अवस्था, शरीर उत्पन्न होनेसे पूर्ण यौवन प्राप्त होने तकः दूसरी अवस्था, यौवन कालसे शरीर ढलने तक और तीसरी अवस्था, शरीर ढलनेसे मृत्यु प्राप्त होने तक है। हमने एक अभिज्ञ मनुष्यसे सुना है कि जानवरोंके शरीरके परिणत होनेमें, पुख़्ता होनेमें, जो समय लगता है और जितने दिन वे जीते हैं उसके हिसाबसे यदि मनुष्यकी तीन अवस्थाओं—यौवन, अधेड़ और मृत्यु का विचार किया जाय, तो मनुष्यकी स्वाभाविक आयु एक सौ बीस वर्षकी होनी चाहिये; परन्तु आज-कल हम देखते हैं कि बहुत मनुष्य बहुत जल्द बूढ़े और कमज़ोर हो जाते हैं और असमय कालके पञ्जेमें फँस जाते हैं। इस प्रकार अपनी आयु घट जानेसे हम सबका यह विश्वास हो गया है कि, इतनीही हमारी स्वाभाविक आयु है। इसका परिणाम यह होता है कि किसी मनुष्यको वृद्धावस्थामें देखकर हमें ऐसा ख़याल होने लगता है कि हम भी इसी दशा को प्राप्त होंगे। बस, यही मनमें सोचते-सोचते हम बुढ़ापेको अपने ऊपर समयसे बहुत पहले बुला लेते हैं। वास्तवमें शरीरको सबल, प्रफुल्लित अथवा अप्रसन्न बनानेवाली मनकी शक्ति बहुतही प्रबल और सूक्ष्म है। हम इस शक्तिका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करलें और उसके कार्य्य समझने लगें, तो हमें १२० वर्ष तक जीनेमें कोई भी बाधा नहीं डाल सकता।

एक स्त्री हमारी परिचित है। वह आज दिन पूरे अस्सी वर्षकी हो गयी है। वर्षके हिसाबसे यदि कोई उसे पूर्ण वृद्धा समझे, तो वह भारी भूल करता है। इस स्त्रीको वृद्धा कहना, मानो प्रकाशको अन्धकार कहना है। पच्चीस वर्षीय नवयुवकके सदृश उसके शरीरमें पराक्रम, ओज, उत्साह और चपलता दृष्टिगत होती है। कुमार अवस्थाही से उसका ऐसा सुस्वभाव हो गया है कि, उसे कहीं भी खराबी नहीं दिखती। उसे सब संसार अच्छा, सब मनुष्य अच्छे और संसारमें होनेवाली सब घटनाएँ अच्छी मालूम होती हैं। छोटे-बड़े सबको मोहित करनेवाला उसका आनन्दी, शान्त और प्रेममय स्वभाव जैसा कुमार अवस्थामें था वैसाही अब भी है। उसने अपना वह आनन्द, शान्ति और प्रेम अस्सी वर्षमें लाखों मनुष्योंमें वितरण किया है। भविष्यमें भी वर्षों तक उसकी ऐसीही दशा रहेगी, इसमें तिलमात्र भी संशय नहीं है।

इस महिलाके निर्मल हृदयमें भयपूर्ण, दूसरोंको सतानेवाले, द्वेषमय एवं लोभमय विचार कभी फटकने नहीं पाये। उसके मनको कभी विकार प्राप्त नहीं हुआ। बस यही कारण है कि, उसका शरीर भी आज तक हर प्रकारके विकारसे बचा हुआ है। दूसरे मनुष्य जिस प्रकार नाना व्याधियोंसे पीड़ित होते हैं, अनेक मनोविकारोंसे ग्रस्त होते हैं; उस प्रकारकी दशा आज तक इस महिलाकी कभी नहीं हुई और न होगी। रोगोंका बोझ ढोनेवालोंका यह ख़याल है कि, जिस प्रकार परमपिता

परमात्माने विवेक, बुद्धि और आरोग्य हम लोगोंको प्रदान किया है वैसेही रोग भी दिया है? परन्तु ये लोग भारी भूल करते हैं, इसका मूर्त्तिमत दृष्टान्त तक उक्त महिला है। इन बीते हुए अस्सी वर्षोंमें इस महिलाको अपनी संसार-यात्रामें नाना प्रकारकी भली-बुरी स्थितियोंका अनुभव हुआ है। यदि वह इस बातसे अनभिज्ञ होती कि दुष्ट मनोविकारोंसे शरीरको कितनी क्षति—कितनी हानि होती है और दुष्ट मनोविकारों-का वास वह अपने मनमें होने देती; तो हम ज़ोर देकर कह सकते हैं कि उसके शरीरकी दुर्दशा कभीकी हो गयी होती। आज उसके शरीर पर यह पराक्रम, यह उत्साह, यह चपलता नामको भी न होती। परन्तु उसे इस बातका पूर्ण विश्वास है कि मैं अपने मनकी आप स्वामिनी हूँ—मेरे मनरूपी राज्य-पर मेरा पूर्ण अधिकार है। अतएव मैं जिसे चाहूँ उसे उस राज्यकी सीमामें पैर न रखने दूँ, जिसे मैं आने दूँगी केवल वही आ सकेगा। वह जानती है कि, अपने मनोराज्यमें अच्छी-बुरी स्थिति लानेका अधिकार पूर्णतया मुझे है। वह महिला कहीं भी जाती हो, कुछ भी कार्य करती हो; उसके हास्यवदन, आनन्दमयी वृत्ति और आरोग्यप्रद बोलचालसे प्रत्येक दर्शकके मनमें सत्प्रेरणा और अलौकिक आनन्द हुए बिना नहीं रहता। शरीरको सुसम्पन्न और वैभवशाली बनाने वाला मन ही है—यह शेक्सपियरका वचन अक्षरशः सत्य है। इसकी पूर्ण सत्यता उक्त महिलाके उदाहरणसे और भी स्पष्ट होती है।

कुछ दिन हुए हमने इस महिलाको कहीं जाते देखा, तो मार्गमें खेलनेवाले बालक इसको जान-पहचानके थे। सब को इसपर एकसी प्रीति थी। इसको देख सब बालक इसकी ओर दौड़-दौड़ कर आते थे। यह महिला सबको प्यार करती थी। किसीसे मीठे शब्द बोलती, किसीको पीठपर हाथ फेरती, किसीको कोई खिलौना अथवा किसीको कुछ खानेको देती थी; इस प्रकारसे उसका और उन बच्चोंका एक जीव हो गया था। वह उन्हें अपने बच्चेके समान समझती थी और वे बच्चे उसे अपनी माताके तुल्य मानते थे। वह बालकोंमें बालक-सी हो जाया करती थी। वह केवल बालकोंके साथही ऐसा व्यवहार नहीं करती थी; बल्कि बूढ़े बड़े, ग़रीब, अमीर, जो उससे मिलते थे सबसे वह प्रेमपूर्ण बर्त्ताव करती थी। किसीको पैसा-टका देकर अथवा किसीको प्रेममय शब्दोंसे और किसीको धैर्य प्रदानसे—वह अपने आरोग्यशाली जीवनका सौभाग्यरूपी आनन्दका प्रवाह निरन्तर बहाती रहती थी। इसी वक्त इसी मार्गसे जाती हुई एक और बुढ़िया हमें दीख पड़ी। वह उक्त आनन्दमय उत्साह-परिपूर्ण आरोग्यदायक वृत्तिवाली बुढ़ियासे दस पन्द्रह वर्ष छोटी थी, परन्तु वह पूर्ण वृद्धा दिखती थी। उसकी कमर झुक गयी थी, उसकी सब गाँठें जकड़ी हुई थीं। दाँतोंने तो उसके मुँहसे इस्तीफाही दे दिया था। वह निस्तेज, म्लान और दुःखीसी मालूम होती थी। उसकी इस वृत्तिसे साफ़ मालूम होता था कि, वह अपने

दुःखोंका विस्मरण करना नहीं चाहती। उसे संसार शून्यसा दीख पड़ता था। सुख तो उसकी आँखोंके सामने आती नहीं। उसे पक्का विश्वास था कि, हम मानव-प्राणियोंके लिये इस संसारमें ईश्वरने सुख नामकी भी नहीं रक्खा है। वह ईश्वरीय दयालुता एवं श्रेष्ठताको नहीं मानती थी। उसके मस्तिष्कमें दुःख, विपत्ति एवं कष्टके विचार कूटकूटके भरे हुए थे। सुविचारोंका लवलेश भी उसके मस्तिष्कमें नहीं था। आनन्दपूर्ण उत्साहमय एवं धैर्यशाली वृत्ति तो उसमें तनिक भी नहीं थी। छूत के रोगोंसे पीड़ित मनुष्य जिस प्रकार अपने पास बैठनेवालोंमें अपना रोग फैलाता है; उसी प्रकार वह स्त्री भी, जिन लोगोंसे उसका काम पड़ता था उनमें, अपनी खिन्न वृत्तिकी प्रेरणा निरन्तर. करती रहती थी। यदि तुम चाहते हो कि हम अपनी ढलती हुई अवस्थामें भी पूर्ण यौवनका सुख अनुभव करें; यदि तुम चाहते हो कि हम निरन्तर उत्साहपूर्ण आनन्दमय रहें, तो तुम्हें चाहिये कि तुम अपने विचारोंको एकदम इनके अनुकूल बनालो। महात्मा गौतम बुद्ध कहा करते थे कि जैसे तुम्हारे विचार होंगे, वैसेही तुम बन जाओगे।" मिस्टर रस्किनने भी कहा है कि, अपने मनमें आनन्दी विचारोंकी लहरें उछालते रहो, तुम्हारी विपत्ति—तुम्हारी व्यथा उसमें समूल बह जावेगी।

यदि तुम अपने यौवनकी स्फूर्ति बल और सौन्दर्य सदा बनाये रखना चाहते हो, तो निरन्तर इन्हींके विचार अपने

मनमें आने दो। अपवित्र विचारोंको अपने मनमें स्थान मत दो। इससे तुम्हारे मनमें सदैव वास करनेवाले सौन्दर्य्य, स्फूर्ति और बल तम्हारे शरीरपर प्रकट होते रहेंगे। जवानीके जितने विचार तुम अपने मनमें रक्खोगे, उतनीही जवानी तुम्हारे शरीर में प्रकट होगी। फिर तुम्हें मालूम होने लगेगा कि, तुम्हारा शरीर भी तुम्हारे मनको सहायता पहुँचाता है, क्योंकि शरीर भी मनको उसी परिमाणसे सहायता पहुँचाता है, जिस परिमाणसे मन शरीरको पहुँचाता है।

जो-जो विचार और मनोविकार तुम अपने मनमें लाते हो, उन्हींके अनुसार तुम्हारे शरीरकी हालत होती है और जैसे विचार तुम अपने मनमें करते हो वैसेही विचार बाहरसे भी तुम्हारी ओर खिंचते हैं। इससे तुम्हारे शरीर पर तुम्हारे मानसिक विचारोंके साथ-साथ वैसेही बाहरी विचार भी प्रभाव डालते हैं। यदि तुम्हारे विचार आनन्दमय, उत्साहपूर्ण और आशाजनक होते हैं; तो वैसेही विचारोंका प्रवाह बाहरसे तुम्हारी ओर आकर्षित होता है। यदि तुम्हारे विचार उदासीन, भयपूर्ण, और निरुत्साही होते हैं तो वैसे विचारोंका प्रवाह अपनी ओर आकर्षित करते हैं। दुष्ट विचारोंको मनमें लाने और उनका बाहरी विचारोंसे मेल होनेपर जो भयङ्कर परिणाम होता है, उसका ख़याल न होनेसे तुम धोखा खाते हो। ऐसी दशामें तुमको फिर पीछे हटना चाहिये, और अपनेमें बचपनके स्वभावका कुछ अंश लाना चाहिये, जिससे बेफ़िक्रीके आ-

नन्दी विचार दिलमें आवें। जब बहुतसे बच्चे मिलकर खेलते रहते हैं, उस समय उनमें खेलके विचारही आते रहते हैं। अगर कोई बच्चा अकेला छोड़ दिया जाय और दूसरे बच्चे उसके पास न हों, तो वह बच्चा शीघ्रही उदास और सुस्त हो जायगा और बिल्कुल खेले कूदेगा नहीं। मानों वह बच्चा अपने विचारोंकी धारासे अलग कर दिया गया—और अब वह अपनी असली अवस्थामें नहीं है। यही दशा तुम्हारी होगयी है। तुममें उस आनन्द-प्रवाहका धीरे-धीरे आना बन्द होगया है, तुम अब बेहद गम्भीर या उदास होगये हो या जीवनके बड़े-बड़े विषयोंमें डूब गये हो। इसलिये अब फिर तुम्हें अपने हृदयमें बचपनके आनन्दी विचारका प्रवाह लानेकी आवश्यकता है। तुम अब भी बिना लड़कपन या बेहूदगी किये आनन्दी और मस्त बन सकते हो। हँसी-खुशीकी हालतमें तुम अपना काम और भी अच्छी तरह कर सकते हो। और अगर तुम बराबर उदासी और गम्भीरता रक्खोगे, तो इससे हानि उठाओगे; क्योंकि जो लोग बहुत दिन तक उदासी या गम्भीरता की दशामें रहते हैं, उनके लिये फिर मुसकुराना भी कठिन हो जाता है।

अठारह या बीस वर्षकी उम्रमें तुमने बचपनके आनन्दी स्वभावसे निकलना आरम्भ किया। तुमने अधिक गम्भीरता धारण की। तुम किसी काममें पड़ गये और उस कामकी चिन्ता, कठिनाई और ज़िम्मेवरीमें फँस गये। तुम ऐसे

कारोबारमें शामिल होगये, जिसमें तुम्हें बहुत कठिनाई या कष्ट उठाना पड़ा या तुम किसी ऐसे काममें भिड़ गये जिसके कारण तुमको खेलनेका अवकाश नही मिला। इसके पश्चात् जब तुम अपनेसे बड़ी उम्रके लोगोंमें मिले-जुले तो तुममें उनके पुराने विचार भर गये, तुम उनकी तरह व्यवहारिक ढँगपर सोच-विचार करने लगे और उनकी भूलोंको बिना चूँ किये सच मानने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि, तुम्हारे भीतर फिक्रसे भरे हुए विचारोंकी धारा आने लगी और बे-ख़बरीमें तुम उसी धारामें बहे चले गये अर्थात् तुम ऐसेही विचारोंमें भूलगये। ये विचार तुम्हारे लोहू और मांसमें पेवस्त हो गये। तुम्हारे शरीरका प्रकाश्य रूप उन विचारोंकी धारासे मिलकर बना है, जो तुम्हारे मस्तिष्कसे तुम्हारे शरीरमें आती रहती है। इसी दशामें वर्षों बीत गये और तुम देखते हो कि अब तुम्हारी चाल-ढालमें पहलेकीसी स्फूर्ति और चतुराई नहीं रही, तुम्हारी चाल भद्दी हो गयी और तुम कठिनाईसे चल फिर सकते हो। अब तुम पेड़ पर वैसी आसानीसे नहीं चढ़ सकते जैसे कि चौदह पन्द्रह वर्ष की उम्रमें चढ़ सकते थे। यह तुम्हारे मस्तिष्कमें ऊपर कहे विचारोंका फल है, उसीके प्रभाव से तुम्हारी चाल-ढालकी तेज़ी और स्फूर्त्ति नष्ट हो गयी है।

अब धीरे-धीरे ही तुम्हारी दशा सुधर सकती है और यह तभी हो सकता है, जबकि तुम अच्छे विचारोंकी प्रबल धारा

अपने मस्तिष्कमें बराबर आने दो और सर्वशक्तिमानसे यह प्रार्थना करो कि, वह तुम्हें सुमार्ग दिखावे और अस्वस्थकर विचारोंसे हटाकर तुम्हारे मस्तिष्कको स्वास्थ्यप्रद और पवित्र विचारोंकी ओर झुकावे।

हैवानोंकी तरह हमारी जातिके लोगोंका शरीर दुर्बल और अवनत हो गया है। ऐसा सदा नहीं रहेगा। आत्म-विद्याकी उन्नतिसे इस अवनतिका कारण विदित हो जायगा और यह भी प्रमाणित हो जायगा कि हम एक श्रेष्ठ नियम या शक्तिके द्वारा किस तरह अपनी मानसिक दशाको सुधार सकते हैं और सदा अपने शरीरका नये सिरेसे गठन कर उसमें अधिक बल उत्पन्न कर सकते हैं। उस समय हम पहलेकी तरह इस नियम या शक्तिको बिना सोचे-समझे काममें नहीं लावेंगे, कि जिससे हमारा शरीर दुर्बल होकर अन्तको नष्ट हो जाय।

सर्वाङ्गपूर्ण स्वास्थ्य जीवनकी साधारण और स्वाभाविक दशा है। इसके विरुद्ध जो दशा है, वह असाधारण और अस्वाभाविक है और यह असाधारण और अस्वाभाविक दशा साधारणतः प्रतिकूलताके कारण होती है। अनन्त जीवनमें दुःख, पीड़ा और रोग हैं ही नहीं; इन सबको मनुष्यने स्वयं उत्पन्न किया है। जीवनके नियमोंके विरुद्ध चलनेसे ही इनकी उत्पत्ति होती है। हम इन कष्टोंके देखनेके ऐसे आदी होगये हैं कि, अगर धीरे-धीरे इनको प्राकृतिक न समझें तो

साधारण तो अवश्य समझने लगते हैं—यह सोचने लगते हैं कि ऐसा तो होता ही है।

एक समय ऐसा आवेगा कि जब वैद्य शरीरका इलाज करनेके बदले मस्तिष्कका इलाज करनेकी चेष्टा किया करेंगे और उससे शरीर निरोग हो जाया करेगा। या यों कहो कि सच्चा वैद्य शिक्षक होगा और उसका काम यह नहीं होगा कि बीमारी या पीड़ा हो जानेके बाद लोगोंको आराम करे; बल्कि उनको पहलेही से ऐसा अच्छा रक्खेगा कि बीमारी पैदाही न होगी। इसके पश्चात् ऐसा समय आवेगा कि जब प्रत्येक मनुष्य स्वयं वैद्य होगा और अपना इलाज आपही कर लेगा। हम जीवनके श्रेष्ठ नियमोंका जितनाही पालन करेंगे और मस्तिष्क तथा आत्माकी शक्तियों से जितनीही अभिज्ञता प्राप्त करेंगे; उतनाही हम शरीरकी ओर कम ध्यान देंगे यानी शरीरकी साधारण सम्हाल रक्खेंगे, पर उसकी चिन्ता कम करेंगे।

आज दिन सहस्रों शरीरोंकी दशा सुधर जाय, अगर उनके स्वामी उन शरीरोंकी अधिक चिन्ता करना या उनपर अधिक ध्यान देना छोड़ दें। यह क़ायदा है कि, जो लोग अपने शरीर पर बहुत कम ध्यान रखते हैं उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। बहुतसे मनुष्य इसी कारणसे सदा बीमार रहते हैं कि, वे हद्दसे अधिक अपने शरीरकी चिन्ता और तरद्दुदमें पड़े रहते हैं।

शरीरको खुराक, व्यायाम, ताज़ी हवा और धूप, जिनकी उसे आवश्यकता है, पहुँचाते रहो और उसे स्वच्छ रक्खो और फिर जहाँ तक बने बहुत कम ख़याल करो। अपने विचार और बातचीतमें शरीरके निषिद्ध विषयपर ज़ोर न दो, रोग और कष्टकी चर्चा मत करो। इन बातोंकी चर्चा करनेसे तुम अपने आपको हानि पहुँचाते हो और उन लोगोंको भी जो तुम्हारी बात ध्यानसे सुनते हैं। इसलिये ऐसी बातोंकी चर्चा करो, जिनके सुननेसे लोगोंकी दशा सुधरे। इस प्रकार तुम उनमें स्वास्थ्य और बल पैदा करोगे, तो अवश्य दुर्बलता तथा रोगको दूर कर दोगे।

निषिद्ध विषयपर ज़ोर देना सदा भयानक होता है। शरीरके विषयमें भी यह सिद्धान्त उतनाही सत्य है, जितना दूसरी वस्तुओंके लिये। एक मनुष्यके, जिसने एक सुयोग्य वैद्य होनेके सिवा मनुष्यकी भीतरी शक्तियोंके बलका ध्यानपूर्वक विचार और मनन किया है—नीचे लिखे वाक्य इस विषयमें बहुमूल्य हैं,—"बीमारीके ख़याल करनेसे हमें वैसेही स्वास्थ्य नहीं प्राप्त हो सकता, जैसे कि अपूर्ण दशाका ध्यान करनेसे हम पूर्णताको नहीं पहुँच सकते और बेसुरी तान सुननेसे सुरीली आवाज़का मज़ा नहीं पा सकते। हमें सदा स्वास्थ्य और आनन्दका उच्चतर विचार अपने मस्तिष्कमें रखना चाहिये।...... अपने स्वास्थ्यके विषयमें कोई ऐसी बात मुँहसे न निकालो, जिसको तुम नहीं चाहते। अपनी बीमारियों पर ज़ोर मत

दो और उनके लक्षणोंका ध्यानसे विचार मत करो। इस बात का अपनेको हरगिज़ विश्वास मत दिलाओ कि तुम पूर्णतया स्वाधीन नहीं हो—अपने आपके पूरे-पूरे मालिक नहीं हो। दृढ़ताके साथ अपने शारीरिक रोगोंपर अपनी प्रभुता प्रकट करो, अपनेको किसी हीन-बलका दास मत समझो। ......
मैं बच्चोंको आरम्भसेही यह सिखाना चाहता हूँ कि, तुम उत्तम और स्वास्थ्यप्रद विचार सोचनेकी आदत डालकर, उच्च विचार पैदा करके और पवित्र जीवन बिताकर अपने और बीमारीके बीचमें एक सिवाना बाँध दो। मैं यह शिक्षा देना चाहता हूँ कि तुम मृत्यु के सब विचार, बीमारीके सब चित्र तथा घृणा, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा, द्वेष और घमण्ड आदि अनुचित जोश अपने मनसे इस तरह निकाल बाहर करदो, जिस तरह कि बुराई करनेकी इच्छाओंको अपने चित्तसे निकालना चाहते हो। मैं उन्हें सिखाऊँगा कि ख़राब ख़ूराक, ख़राब पानी या ख़राब हवासे ख़ून ख़राब होता है; ख़राब ख़ूनसे रगो-रेशे ख़राब होजाते हैं और इस तरह माँसके ख़राब होने से आचरण बिगड़ जाता है। स्वास्थ्यप्रद विचार स्वस्थ शरीरके लिये वैसेही आवश्यक हैं जैसे पवित्र विचार पवित्र जीवनके लिये आवश्यक हैं। दृढ़ आत्मविश्वासी को उन्नतिकी चेष्टा करनी चाहिये और सब प्रकारसे जीवनके शत्रुओंका सामना करनेके लिये कटिबद्ध रहना चाहिये। बीमारोंको चाहिये कि आशा और भरोसा रक्खें और चित्तको प्रसन्न रक्खें। हमारे विचारही

उन्नतिकी सीमा बाँधते हैं। कोई मनुष्य अपने भरोसे से अधिक सफलता या स्वास्थ्य प्राप्त नहीं कर सकता। साधारणत: जो बाधाएँ हमारे सामने आती हैं, वे हमारीही पैदा की हुई हैं।

इस विश्वमें जिस वस्तुका बीज बोओ, वही वस्तु उत्पन्न होती है। घृणासे घृणा, ईर्षासे ईर्षा, द्वेषसे द्वेष, घमण्डसे घमण्ड और प्रतिहिंसासे प्रतिहिंसा उत्पन्न होती है। हरेक बुरे विचारसे बुरे विचारही पैदा होते हैं और यही परम्परा चली आती है, जिससे कि संसार इन्हींसे भर जाता है। सच्चे वैद्य और सच्चे मा-बाप भविष्यमें शरीरमें दवाएँ ठूँसनेके बदले मस्तिष्कको उत्तम उद्देश्योंसे भरेंगे। भविष्यकी माताएँ अपने बालकोंको यह सिखावेंगी कि क्रोध, द्वेष और घृणाके ज्वरको प्रेमकी औषधिसे, जो इस संसारकी सब बीमारियोंका इलाज है, मिटाओ। भविष्यकालके वैद्य लोगोंको इस आशयकी शिक्षा देंगे कि प्रसन्नचित्त रहो, शुभ इच्छा रखो और सुकर्म करो। स्वास्थ्य बनाये रखने और चित्तको पुष्ट करनेके लिये, ये ही अकसीर दवाएँ हैं। चित्तका आनन्द औषधिके समान लाभ पहुँचाता है।

तुम्हारे मस्तिष्कके स्वास्थ्य और मज़बूतीकी तरह तुम्हारे शरीरका स्वास्थ्य भी तुम्हारे सम्बन्धके आधार पर है। हमने जान लिया है कि, कुदरती तौर पर उस अनन्त जीवनमें और समस्त जीवनके आधार उस परमात्मामें किसी प्रकारकी दुर्ब-

लता या रोग प्रविष्ट नहीं हो सकता। इसलिये तुम उस अनन्त जीवनसे अपना ऐक्य-भाव भली भाँति अनुभव करो, इसे अपने अन्दर स्वतन्त्रता और अधिकतासे आने दो; फिर तुम्हें पूरा-पूरा और नवीन शारीरिक स्वास्थ्य तथा बल प्राप्त होगा।

नेकी सदा बदीपर प्रभुता जमा सकती है और स्वास्थ्य सदा रोगको दबा सकता है। मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही हो जाता है; इसलिये चेतो और पवित्र विचारोंको अपने चित्तमें स्थान दो।

इन सबका सार इस एक वाक्यमें कहा जा सकता है कि "परमात्मा सर्वाङ्गसुन्दर है और वैसेही तुम भी हो।" तुम्हें अपनी आत्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जब तुम्हें यह ज्ञान प्राप्त हो जायगा, तब तुम देखोगे कि तुममें वह शक्ति है जिससे तुम अपने शरीरके बाहरी भावको स्वेच्छानुसार बना सकते हो। तुम्हें परमात्माका और अपना ऐक्यभाव पहचानना और समझना चाहिये। फिर जब परमात्माकी इच्छा हमारी इच्छा है, हमारी इच्छा परमात्माकी इच्छा है, और परमात्मा के लिये सब कुछ सम्भव है इत्यादि भावको समझकर, उसीमें लगातार जीवन व्यतीत करनेके लिये, विभिन्नताके विचारको एकदम दूर कर दोगे; तो तुम्हारे शारीरिक रोग और दुर्बलताही नहीं जाती रहेगी वरञ्च सब ओरसे सब प्रकारके विघ्न और बाधाएँ भी मिट जावेंगी।

अतएव परमात्मामें मग्न होकर आनन्द प्राप्त करो। यह

तुम्हारे सारे मनोरथ सिद्ध करेगा। फिर तो तुम्हारे अन्दरसे सदा यही ध्वनि निकला करेगी कि, मैं सुखी हूँ। अपने मनसे यह विचार दूर कर दो कि उत्तम वस्तुएँ और उत्तम द्रव्य भविष्यमें प्राप्त होंगे। इसी समय वास्तविक जीवनमें आ जाओ और उन वस्तुओं तथा उन द्रव्योंपर अधिकार जमा लो। याद रक्खो कि, तुम्हारे जैसे मनुष्यके लिये उत्तमसे उत्तम वस्तुएँ ही योग्य हो सकती हैं, साधारण और तुच्छ वस्तुएँ नहीं।

चौथा अध्याय ।

प्रेमका परिणाम ।
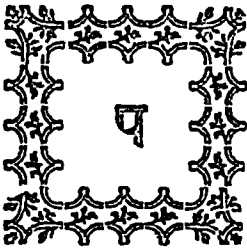
परमात्मा कृपासागर है। जब हमें उस सर्वशक्तिमान परमात्मा की और अपनी एकताका पूर्ण ज्ञान हो जावेगा; तब हमारे अन्तःकरण में प्रेम स्फुरित होगा—हमारा अन्तःकरण प्रेमसे इतना भर जायगा कि, हम सारी सृष्टिको प्रेममय देखने लगेंगे। हम सब मानवप्राणी उसी अगाध चैतन्य ईश्वरके अंशभूत हैं, ऐसा ज्ञान जब हमें हो जावेगा तब किसी प्राणीको हानि पहुँचानेका कुविचार हमारे मनमें नहीं आवेगा। क्योंकि यह बात हम जानने लग जावेंगे कि, शरीरके किसी भी अवयवको चोट पहुँचानेसे सारे शरीरको तकलीफ होती है।

सब जीवोंकी एकताका ज्ञान हमें जब हो जायगा, जब हम जानने लगेंगे कि एकही अनन्तसे हमारी उत्पत्ति है और एकही जीव सब मानवप्राणीमें विद्यमान है; तब हमारे मनको द्वेष-बुद्धिका नाश हो जायगा। काम, क्रोध, मान, मोह और लोभ हमारे अन्तःकरणसे निकल जावेंगे और हमारे

अन्तःकरणमें सब मानवप्राणियोंके प्रति प्रेम उद्भासित होगा; बल्कि यह कहना चाहिये कि वहाँ पर प्रेम अपना अटल राज्य जमा लेगा। तब तो जहाँ कहीं हम जावेंगे—जिन-जिनसे हमारा सम्बन्ध होगा, उन सबमें हमें ईश्वरही ईश्वर दिखाई देगा। हमें चारों ओर अच्छाही अच्छा दीखेगा, जिससे हमें अकथनीय लाभ प्राप्त होगा। एक कहावत है कि 'जो दूसरोंके लिये गड्ढा खोदता है उसके लिये कुआ तयार हैं।' इस बातमें महत्त्वपूर्ण एक वैज्ञानिक तत्त्व छिपा हुआ है। वह यह है, कि जब हम किसीका अनिष्ट सोचते हैं, तो उस अनिष्ट विचारका प्रभाव उस मनुष्यपर जिसका कि हम अनिष्ट चाहते हैं—अवश्यमेव पड़ता है और उस मनुष्यके मनमें हमारे भेजे हुए अनिष्ट विचार अपने सजातीय विचारोंको उत्पन्न करते हैं और हमारे वेही विचार उस मनुष्यके अनिष्ट विचारोंको साथ लेकर हमारे पास वापिस आते हैं। इससे यह मालूम होता है कि दूसरोंके लिये क्रोध, द्वेष, मत्सर आदि मनोविकारोंको अपने मनमें लानेसे दूनी हानि होती हैं; अर्थात् हमारे अनिष्ट-चिन्तनका परिणाम उस मनुष्यपर, जिसका हम अनिष्ट करना चाहते हैं, जितना होता है उसका दूना बुरा परिणाम हमपर होता है।

जब हम यह बात भली प्रकार समझ जावेंगे कि स्वार्थ ही सब अपराधोंका—सब पापोंका मूल है और अज्ञान स्वार्थ का मूल है तब दूसरेका बुरा करके हम अपना भला न

चाहेंगे। स्वार्थी मनुष्य अज्ञानी होता है। सच्चा बुद्धिमान कभी स्वार्थी नहीं होता। वह दूरदर्शी होता है। वह समझता है कि मनुष्यजाति-रूपी विराट शरीरके हम प्रत्येक जन भिन्न-भिन्न क्षुद्र परमाणु हैं; इससे दूसरे व्यक्तिरूपी परमाणुका अनहित करके अपना हित करना लाभकारी नहीं, बल्कि हानिकर है; अतएव संसारकी भलाईमें वह अपनी भलाई समझता है।

जब हम सच्चे महात्मा बन जावेंगे—ब्रह्मसे एकता अनुभव करने लगेंगे, तब परमात्मा हमारे हृदयमें वास करने लगेगा। तब तो जिन-जिन से हमारा सम्बन्ध होता जावेगा, उनको हम अपने समान बनाने लग जावेंगे—उनके अन्तःकरणके दैवीगुणोंको प्रोत्साहित करने लगेंगे। और अगर हमारे अन्तःकरणमें शैतानी गुणोंका वास होगा, तो जिन-जिन से हमारा सम्बन्ध होगा उनके अन्तःकरणमें हम इन्हीं ख़राब गुणोंकी प्रेरणा करेंगे और उन्हें अपनासा बनानेका बुरा टीका हमारे ही सिरपर लगेगा।

हम बहुतसे लोगोंको ऐसा कहते हुए सुनते हैं कि—"हम अमुक मनुष्यमें कुछ भी अच्छाई नहीं देखते" पर ऐसे कहनेवालोंको हम दूरदर्शी नहीं समझते। इस प्रकारकी बात कहनेवालोंसे हम कहेंगे कि कुछ दीर्घ दृष्टिसे देखोगे तो तुम्हें प्रत्येक मानव-प्राणीमें ईश्वरत्व दीख पड़ेगा। परन्तु यह बात भी न भूलना चाहिये कि प्रत्येक जगह ईश्वरत्वको

देखनेके लिये अपनेमें ईश्वरत्वका होना अत्यन्त आवश्यक है। महात्मा ईसा समग्र मानव-प्राणियोंमें सर्वोत्कृष्ट गुणोंको—अलौकिक भलाईको देखते थे। इसका कारण यही था कि, उन्होंने अपने अन्तःकरणमें ईश्वरीय गुणोंको जाग्रत किया था। वे पापियोंके—चाण्डालोंके साथ भोजन करनेमें संकोच नहीं करते थे। सच है कि, महात्माओंके लिये ऊँच जाति-वाला और नीच जातिवाला चाण्डाल एकसाही है; क्योंकि वे भली भाँति जानते हैं कि चाण्डालके हृदयमें वास करनेवाला परमात्मा और उच्च जातीय मनुष्यके हृदयमें वास करनेवाला परमात्मा एकही है; अतएव उनके मनमें उन दोनोंके लिये बन्धुत्वका भाव एकसा रहता है।

अमुक-अमुक मनुष्य अमुक-अमुक भूलें करेगा, वह दुराचारी होगा, इत्यादि प्रकारके विचार हमारे मनमें उद्भासित होने लगें तो समझना चाहिये कि उस मनुष्यके मनमें दुष्ट विचा-रोंकी प्रेरणा हम स्वयं करते हैं। हमारी की हुई प्रेरणाके कारण वह उन भूलोंको करनेमें और दुराचारमें प्रवृत्त होगा; अतएव इस पापके भागी हम स्वयं ही होंगे। यदि दूसरे मनुष्यके लिये भलेकी, शुद्धताके विचार हम करने लगें तो इससे हम उस मनुष्यको सदाचरणमें एवं शुद्धाचरणमें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा करते हैं और उसका आचरण सुधारनेमें उसके हम बड़े सहायक होते हैं। उन सबके प्रति, जिन-जिनसे हमें मिलनेका अवसर मिले, हम प्रेम प्रकट करेंगे तो उनके हृदयमें भी

प्रेमका आविर्भाव होगा और उसका असर हमारे लिये अवश्यमेव लाभकारी होगा। यदि तुम चाहते हो कि, संसार तुमसे प्रेम करे तो प्रथम तुम संसारपर प्रेम करना सीखो।

हम संसार पर जितना प्रेम प्रदर्शित करेंगे, संसार हमारे ऊपर उतनाही प्रेम प्रकट करेगा। विचार भी एक प्रकारकी शक्ति है। प्रत्येक विचार अपने सजातीय विचारको उत्पन्न करता है, अतएव विचार-शक्तिका हमारे कार्यपर—हमारे समग्र आयुक्रमपर—बहुतही असर होता है। यह बात ध्यानमें रखकर कि ईश्वरने विचारोंमें अद्भुत शक्ति रक्खी है, हमको चाहिये कि अपने अन्तःकरणके कोनेमें किसी दुष्ट विचारको स्थान न दें। सबसे अच्छी बात यह है कि, प्रत्येक मनुष्य दूसरोंके लिये अपने मनमें प्रेममय विचार रक्खे।

हमारे एक मित्रका नित्य-नियम प्रत्येकके ध्यानमें रखनेके योग्य है। वह अपने मनकी प्रवृत्ति ऐसी रखता था कि, सब जीवोंकी ओर उसका प्रेम-प्रवाह निरन्तर प्रवाहित होता रहता था। वह हमेशा कहा करता था कि प्रिय जनो! मेरा तुमपर असीम प्रेम है। जब हमें यह बात ज्ञात हो जावेगी कि प्रत्येक विचार वापस लौटने या नष्ट होनेके पूर्व दूसरोंपर अवश्य अपना असर पैदा करते हैं; तब हमें मालूम होगा कि वह मनुष्य अपने आशीर्वादसे सिर्फ उन्हीं लोगोंको फ़ायदा नहीं पहुँचाता था, जिनसे कि उसका सम्बन्ध होता था; बल्कि सारी दुनियाको लाभ पहुँचाता था। कहना नहीं

होगा कि हमारे मित्रकी ओर भी संसारकी ओरसे प्रेमकी लहरें विपुलतासे आती थीं।

पशुपक्षी तक पर इन शक्तियोंका असर बराबर होता है। कुछ पशु तो मनुष्योंसे भी बहुत जल्द प्रेमवश हो जाते हैं। वे हमारे विचारोंको—हमारी मानसिक दशाओंको झट ताड़ जाते हैं; अतएव जब कभी हम किसी पशुको देखें,तो उसकी ओर प्रेम-प्रवाह छोड़कर हम उसका बहुत कुछ भला कर सकते हैं। हमारे पुकारनेसे—हमारे प्रेममय शब्दोंसे उनपर गहरा प्रभाव पड़ता है। वे हमारे प्रेममय शब्दोंका उत्तर अपनी चेष्टाओंसे देने लगते हैं। इस जगत्‌में यदि हम सम्पूर्ण प्राणियोंमें ईश्वरके दर्शन करने लगें, तो क्या यही जगत् हमारे लिये स्वर्ग-तुल्य नहीं हो जावेगा? ऐसे जगत् में रहनेका अनुभव प्राप्त हो जाने पर, किसे विलक्षण सुख और अप्रतिम आनन्द नहीं होगा? यह अधिकार तुम और हम सहजमें प्राप्त कर सकते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि जिन्हें परमात्माकी ऐक्य-प्रतीति हो गयी है, उन्हें हरेक प्राणीमें ईश्वरके दर्शन होने लगते हैं। जब हमें उस सर्वशक्तिमान् प्रेमसागर परमात्माकी ऐक्य-प्रतीतिका ज्ञान हो जायगा,तब हमारा अन्तःकरण प्रेमसे लबालब भर जायगा। हमें ऐसा मालूम होने लगेगा कि मानों प्रेम वहाँ पर बड़ी प्रबलतासे उमड़ ही रहा है। फिर तो जो कोई हमारे पास आवेगा—जिस किसीसे हमारा सम्बन्ध होगा, उनको सच्चे

जीवन और सच्चे उत्साहकी स्फूर्त्ति होने लगेगी। सर्व प्राणियोंके प्रति हमारा प्रेम-प्रवाह निरन्तर छूटता रहे, तो वह उन सब प्राणियोंके प्रेम-प्रवाहसे मिलकर प्रोत्साहित होता हुआ वापस आकर, हमारे अन्तःकरणमें बड़े ज़ोरसे प्रवाहित होने लगेगा। जिसके हृदयमें जितनी दया है—प्रेम है, उतनाही उसका ईश्वरसे सम्बन्ध है—उतनीही वह देवलोककी प्राप्ति कर सकता है—उतनाही वह स्वर्गीय राज्यमें प्रवेश कर सकता है; क्योंकि ईश्वर दयामय एवं प्रेमात्मा है। प्रेमलोकही देवलोक है, यह बात प्रत्येक मनुष्य स्वीकार कर सकता है।

एक तरहसे देखा जावे तो संसारमें जो कुछ है, वह प्रेमही है अथवा यों कहना चाहिये कि प्रेमही जीवनकी कुञ्जी है। प्रेमका प्रवाह इतना प्रचण्ड है कि, वह सारे संसारको विचलित कर सकता है। सबके लिये प्रेममय विचार करो, जिससे सब ओरसे तुम्हारी ओर प्रेम आकर्षित होता चला आवे।

जब हम विचार-शक्तिको बाहर निकालते हैं, तब वह शक्ति अपनी सजातीय शक्तिसे मिलकर प्रोत्साहित होती हुई हमारे पास वापस आती है। यह नियम अपरिवर्त्तनीय, अटल और अक्षय है। इसके सिवा जो-जो विचार हम अपने मनमें लाते हैं, उनका प्रत्यक्ष परिणाम हमारे शरीर पर होता है। प्रेम और उसके समान दूसरी मनोवृत्ति हितकारक एवं स्वाभाविक है, क्योंकि ईश्वर प्रीतिरूप है। यह मनोवृत्ति ईश्वरीय

नियमके अनुकूल है। इस मनोवृत्तिसे हमें बल और आरोग्य प्राप्त होता है—हमारा सौन्दर्य वृद्धिगत होता है—हमारी आवाज़ मधुर होती है और इसके सिवा हम इतने मोहक बन जाते हैं कि, संसार हमारे वशमें हो जाता है। हम सब भूतोंपर प्रेमवर्षा करने लगें, तो वे भी परिवर्त्तन-रूपमें हम पर प्रेमदृष्टि करेंगे; जिससे हमें विशेष पराक्रम—विशेष उत्साह प्राप्त होगा। प्रेमही एक सत्य पदार्थ है और द्वेषसे यह अधिकतर प्रबल है। प्रेमसे द्वेष जय कर लिया जाता है।

यदि तुम द्वेषके बदले द्वेष करोगे, तो कहना होगा कि तुम उस द्वेषको अधिक उत्तेजित करते हो यानी तुम प्रज्वलित अग्निमें घृत डालते हो। द्वेषसे किसी प्रकारका लाभ नहीं होता, वरन हानिही हानि होती है। यदि तुम द्वेषके बदले प्रेम करोगे, तो तुम्हारे ऊपर द्वेषका किञ्चितमात्र परिणाम नहीं होगा, अथवा यों कहना चाहिये कि वह द्वेष तुम्हारे पास तक पहुँच भी न सकेगा। ऐसा करनेसे एक दिन तुम अपने कट्टर शत्रुको भी अपना परममित्र बना लोगे। यदि तुम द्वेषके बदले द्वेष करोगे, तो अपने आपको नीच दशामें डाल लोगे; परन्तु द्वेषके बदले प्रेम करोगे तो केवल तुम अपने आपकोही उन्नत दशामें नहीं पहुँचाओगे, वरंच उस मनुष्यको भी उन्नतिके शिखरपर चढ़ानेमें समर्थ होगे, जो तुमसे द्वेष करता है एवं तुम्हारा अनहित चाहता है।

एक ईरानी साधुने कहा है कि अगर तुम्हारे साथ कोई गुस्ताखी करे, तो तुम उसके साथ सज्जनतासे पेश आओ। हाथी तक तुम्हारी सज्जनतासे वशमें हो जाता है। अपने शत्रुके साथ भी नम्रतापूर्वक आचरण करो। महात्मा बुद्धने कहा है कि 'यदि कोई मेरा बुरा करेगा तो मैं उसका बदला हार्दिक प्रेम द्वाराही दूँगा—जितना वह मेरा अनिष्ट चाहेगा उतनाही मैं उसका भला चाहूँगा।' एक चीनी सज्जनने कहा है, कि बुद्धिमान मनुष्य अपकारका बदला उपकार द्वारा देते हैं। एक हिन्दू महात्माका मत है कि, अपकारके बदले उपकार करो, क्रोधको प्रेम द्वारा जय करो, द्वेषसे द्वेष नष्ट नहीं होता, वरन् प्रेमही से द्वेष नष्ट होता है। सच्चा बुद्धिमान् किसीको भी अपना शत्रु नहीं समझता। हम बहुत मनुष्योंको ऐसा कहते हुए सुनते हैं,—"कुछ परवा नहीं, हम उसके अपकारका बदला लेनेमें समर्थ हैं।" परन्तु खूब समझ लो कि, ऐसा करनेके लिये तुमको उस अपकारी मनुष्यके समान बनना पड़ेगा, जिससे तुम्हें और उसे दोनों को भारी हानि पहुँचेगी। यदि तुम अपने अन्तःकरणमें उदारताको स्थान देकर द्वेषके बदले प्रेम करोगे, बुरे बर्तावके लिये दयालुता प्रदर्शित करोगे; तो केवल तुम अपना भलाही न कर लोगे वरन् उस दूसरे मनुष्यका भी भला कर सकोगे और यह कभी नहीं हो सकता कि तुम दूसरोंको तो सहायता करो और उससे तुम्हें किसी प्रकारका लाभ न हो। यदि तुम दूसरोंको

सहायता करनेमें अपने आपको भूल जाओगे, तो इस प्रकारकी सेवा करनेसे तुम्हें बहुत भारी लाभ होगा। परन्तु जब तुम बुरेके साथ बुरा वर्ताव करते हो, तो निश्चय है कि तुम्हारे हृदयमें बुरी स्थिति वर्तमान है जो ईर्ष्या, द्वेष और बुरे वर्तावको तुम्हारी ओर आकर्षित करती है; तुम उसीके लायक हो, इसवास्ते तुम्हें किसी प्रकारकी शिकायत करनेका अधिकार नहीं। परन्तु यदि तुम अपकारके बदले उपकार करोगे, द्वेषका बदला प्रेम द्वारा दोगे, तो तुम्हारा अनिष्ट नष्ट हो जावेगा, तुम विजयी होगे; इतनाही नहीं, वरन ऐसा करनेसे उस मनुष्यको भी तुम ऐसा लाभ पहुँचा सकते हो, जिसकी उसे बहुत आवश्यकता है। इस तरह तुम उसके उद्धारके कारण हो सकते हो और वह भी उन मनुष्योंके उद्धारका कारण हो सकता है, जो ऐसीही भूलमें पड़े हुए हैं—चिन्ता और शोकमें डूबे हुए हैं। हमें अपने नित्यप्रतिके जीवनमें नम्रता, सहानुभूति और दयाकी अधिक आवश्यकता है। जब हमारा आचरण इनके अनुकूल बन जावेगा, तो हम न किसीको दोष देंगे और न किसीको बुरा ही ठहरावेंगे, बल्कि दोष देने और बुरा ठहरानेके बदले हम दूसरोंके प्रति सहानुभूति दरसावेंगे—दुःख-दर्दमें दूसरोंका साथ देंगे, संसारकी दुर्गम घाटियों और मञ्जिलोंमें एक दूसरेका हाथ पकड़कर एक दूसरेके सहायक बनेंगे—प्रत्येक मनुष्यके साथ प्रेमपूर्ण आचरण करेंगे, एक दूसरेको प्रेमपूर्ण एवं शुभ दृष्टिसे देखेंगे,

आपसमें मधुर बातें करेंगे और हर हालतमें एक दूसरेके सहायक रहेंगे।

जब हमें इस बातका ज्ञान हो जावेगा कि, सब दुराचारों—सब भूलों—सब तरहके पापों और इनसे उत्पन्न होने वाले सब दुःखोंका मूल-कारण अज्ञानही है; तो फिर इनका उद्भाव हम जहाँ किसी भी रूपमें, किसी भी मनुष्यमें देखेंगे वहाँ हमारे शुद्ध और निर्मल हृदयमें उस मनुष्यके प्रति दया और सहानुभूति प्रकट होगी। फिर दया प्रेममें परिवर्त्तित हो जावेगी, जिससे हम उसकी सेवा करने लगेंगे। यही ईश्वरीय मार्ग है। इस तरह हम एक निर्बल मनुष्यको, जो गिर रहा है, बाँह पकड़कर तब तक सहायता दे सकेंगे जब तक कि वह स्वयं अपने पैरों पर खड़ा हो न सके और अपना स्वामी आप न हो सके। किन्तु सारा जीवन भीतरसे निकल कर बाहर प्रकट होता है, अतएव वही मनुष्य पूर्ण रूपसे आप अपना स्वामी हो सकता है जिसको अपने भीतर आत्म-ज्ञान हो जाता है और वह उच्चतर नियमोंको समझने लगता है। दूसरे मनुष्यमें यह ज्ञान उत्पन्न करनेमें सफलीभूत होनेके लिये यही एकमात्र उपाय है कि स्वयं अपने आचरणसे—अपने जीवनसे—आत्मज्ञान प्रकट किया जाय।

केवल ज़बानसेही प्रेमकी व्याख्या मत करो, वरंच अपने आचरणको प्रेममय बनाओ। दूसरे लोग प्रेममय जीवन व्यतीत करें, इसके लिये उनको उपदेश देनेके बदले तुम स्वयं

प्रेममय जीवन व्यतीत करो। जैसा हम बोयेंगे, वैसाही फल पावेंगे। जिस जातिका बीज बोया जावेगा, उसी जातिका फल उत्पन्न होगा। हम केवल शारीरिक हानि पहुँचानेसे ही दूसरों को नहीं मारते हैं, बल्कि हम अपने दुष्ट विचारोंसे भी दूसरोंकी हत्या करते हैं। परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि, ऐसा करनेसे हम आत्महत्या भी कर लेते हैं। बहुतसे मनुष्य दुष्ट विचारोंके कारण बीमार हो चुके हैं और कुछ तो इन्हींके कारण मृत्युके ग्रास बन चुके है। संसारसे द्वेष रखकर हम उसे नरकसा बना लेते हैं। इसके विपरीत संसारपर प्रेम रखनेसे सकल-सौन्दर्ययुक्त स्वर्गको हम रचना कर सकते हैं।

बिना प्रेमका जीना जीना नहीं है; वह जीना मृतवत् है। जो जीवन प्रेममय विचारोंमें व्यतीत होता है वह परिपूर्ण, सन्तुष्टियुक्त एवं शक्तिशाली है। ऐसे जीवनका प्रभाव असीम हो जाता है। मनुष्य जितना उदार हृदयवाला होगा, उतना ही वह विशेष प्रेमी होगा। इसके विपरीत जो मनुष्य जितनाही संकीर्ण हृदयवाला होगा, उतनाही वह सीमाबद्ध होगा और उसे पृथक्ता विशेष रुचिकर होगी। उदारहृदय पुरुषमें किसी प्रकारकी सीमा नहीं रहती, वह सारे संसारपर प्रेम करता है और सारे संसारके जीवनमें शरीक होता है। ऐसा मनुष्य सारे संसारको घर बैठेही अपनी ओर आकर्षित कर सकता है।

जो जितनाही अधिक प्रेम करेगा, वह उतनाही ईश्वरके निकट जावेगा, क्योंकि ईश्वर प्रेमका सागर है। जब हमें इस अनन्त जीवनके साथ अपनी एकताका ज्ञान हो जावेगा, तब ईश्वरीय और विश्वव्यापी प्रेम हममें ऐसा भर जावेगा कि, उससे हमारा जीवन भरपूर होकर अत्यन्त आनन्द प्राप्त करेगा और फिर सारे संसारके लोगोंको भी आनन्दसे लबालब कर देगा।

जब हम इस अनन्त जीवनसे अपनी एकता समझ लेते हैं, तब हम अपने भाइयोंके साथ अपना सच्चा सम्बन्ध मालूम कर लेते हैं। हम उस बड़े नियमसे मेल करने लगते हैं यानी हम औरोंकी सेवा करनेमें स्वार्थको भूल जाते हैं और उसे छोड़ देते हैं; हमें इस बातका ज्ञान हो जाता है कि,हम सबका जीवन एक है और इसलिये हम सब एक बड़े कुटम्बके आदमी हैं। फिर हम यह समझने लगते हैं कि, यदि हम दूसरोंके लिये कुछ काम करेंगे या दूसरोंको कुछ लाभ पहुँचावेंगे, तो साथही हम अपने लिये भी वही काम करेंगे और अपने तईं भी लाभ पहुँचावेंगे। हम यह भी समझेंगे कि, यदि हम दूसरोंको नुकसान पहुँचावेंगे, तो हमें भी नुकसान पहुँचेगा। यह नहीं हो सकता कि, हम दूसरोंको नुकसान पहुँचावें और हमें नुक़सान न पहुँचे। हमें यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि, जो मनुष्य सिर्फ अपने लियेही जीता है वह संकुचित और नीच जीवन व्यतीत करता है, क्योंकि वह

दूसरोंके जीवनमें बिलकुल गरीका नहीं होता और उससे औरोंको कुछ लाभ नहीं पहुँचता। लेकिन जो मनुष्य दूसरोंकी सेवामें अपने जीवनको भूल जाता है, उसका जीवन हज़ार क्या लाख गुना बढ़ जाता है। वह सौन्दर्य एवं प्रभावसे मालामाल हो जाता है और इस बड़े कुलके हरेक कुटुम्बीको जो आनन्द, जोश और कीमती चीज़ें मिलती हैं वे उस मनुष्यको भी मिलती हैं; क्योंकि वह उनके जीवनमें शामिल है। अब हम सच्ची सेवाके विषयमें कुछ लिखना चाहते हैं। पीटर और जान एक दिन गिरजेको जा रहे थे। दरवाज़ेपर उनको एक लँगड़ा मनुष्य मिला। उसने उनसे कुछ याचना की। इसपर उन्होंने सोचा कि, इसको आजकी ज़रूरत मेट दी जावेगी, तो कल फिर इसकी यही हालत हो जावेगी। इससे कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे इसकी सब आवश्यकताएँ पूर्ण हो जावें। उन्होंने उसकी सच्ची सेवा की—मानवजातिके लिये अनुकरणीय कार्य्य किया। उन्होंने उसका लँगड़ापन दूर कर दिया और उसे ऐसी स्थितिमें ला पहुँचाया, जिससे वह आप अपनी मदद कर सके, दूसरोंकी सहायताका मुहताज न रहे। सबसे बड़ी सेवा वही है, जो मनुष्यको स्वाश्रय कर सके। दूसरी तरहसे सहायता पहुँचानेसे हम मनुष्योंको आलसी बनानेमें सहायक होते हैं।

सबसे बड़ी सहायता जो हम मनुष्यको दे सकते हैं वह यह है कि, हम उसे आत्मज्ञान करा दें—उसकी आन्तरिक

शक्तियोंका परिचय करा दें। फिर उसे विवेकपूर्वक ईश्वरीय एकताका ज्ञान करा दें, जिससे वह ईश्वरकी ओर अपना अन्तःकरण खोलना सीखे और उन शक्तियोंको जानकर उनसे काम ले, जो उसके भीतर छिपी हुई हैं।

पाँचवाँ अध्याय।

पूर्ण शान्तिकी सिद्धि।
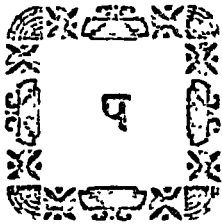
परमात्मा अगाध शान्तिसागर है। जब हम उसके साथ अपना ऐक्यभाव कर लेंगे; तब हमारे अन्तःकरणमें शान्तिका प्रवाह बढ़ने लगेगा और शान्ति होनाही परमात्माकी एकताका अनुभव करना है। "दैवी अन्तःकरण होना ही सच्चा जीवन और यथार्थ शान्ति है", ऐसा एक सज्जनने कहा है। इसमें एक अति गम्भीर तत्त्व छिपा हुआ है। हम ईश्वर-स्वरूप हैं, ऐसा ज्ञान हमें हो जावे और वह हमारे आचरणमें दिखाई देने लगे; तो समझना चाहिये कि हमारा अन्तःकरण दैवी हो गया। अन्तःकरणके दैवी होनेसे, हमें ईश्वरीय एकता प्राप्त होगी और साथही हमें पूर्ण शान्तिका अनुभव भी होने लगेगा।

आजकल हम जिधर आँख उठाते हैं, उधरही देखते हैं कि, लाखों स्त्री-पुरुष—जो चिन्तामें पूर्णतया ग्रस्त हैं और जिनको स्वस्थताकी वायुका भी स्पर्श नहीं हुआ है—इधर-

उधर शान्ति पानेके लिये भटक रहे हैं। शान्तिप्राप्तिके लिये वे बेचारे विदेश जाते हैं, समग्र पृथ्वीपर पर्यटन करते हैं; परन्तु उनका सब प्रयत्न व्यर्थ होता है। शान्ति उन्हें कहीं नहीं मिलती और न कभी मिलेगी, क्योंकि वे उसके असली मार्गको नहीं ढूँढ़ते। वे उसे अन्तःजगत्‌में न ढूँढ़कर बाहरी जगत्‌में ढूँढ़ते हैं, यही कारण है कि वे सफल-मनोरथ नहीं होते।

शान्ति बाहरी जगतमें नहीं मिलती, वह अपने भीतरही मिलती है। चाहे हम उसकी प्राप्तिके लिये दसों दिशाओंमें घूमें, चाहे हम उसे पानेके लिये नाना प्रकारके भोग भोगें और चाहे हम उसकी प्राप्तिके लिये बाहरी जगत्‌के एक-एक स्थानको ढूँढ़ डालें परन्तु वह प्राप्त न होगी; क्योंकि हम उसे वहाँ ढूँढ़ते हैं, जहाँ वह है ही नहीं। जिसकी अन्तरात्माने विषयके उपभोगोंकी लालसाको त्याग दिया है, उसीको सच्चा आनन्द और यथार्थ शान्ति प्राप्त होती है। इसके विपरीत विषय-भोगसेही आनन्दकी प्राप्ति मानकर जो विषय-भोगकी कामना अधिक करता है वह अधिक रोगी, अधिक दुःखी एवं अधिक असन्तोषी होता है।

ईश्वरसे एकता होनेसेही शान्ति प्राप्त होती है। जिस प्रकार बालकका अपनी माताके साथ निर्व्याज प्रेम रहता है—जैसे उससे उसकी पूर्ण एकता रहती है वैसाही प्रेम—वैसीही एकता शान्तिरूपी जगज्जननीसे करनाही शान्तिकी प्राप्तिका उत्कृष्ट मार्ग है। शान्तिस्वरूपिणी जगज्जननीसे

ऐक्यभाव रखनेवाले सत्पुरुषोंको पूर्ण और अक्षय आनन्द निरन्तर प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार शान्ति प्राप्त किये हुए एक परिचित मनुष्यका इस समय हमें स्मरण होता है। वह मनुष्य लगातार बहुत दिनों तक बीमार रहा। आरोग्य किस चिड़ियाका नाम है, यह उसे मालूमही न था। उत्साह एवं ओज तो उसके पास फटकने भी न पाते थे। उसका मस्तिष्क कमज़ोर होकर उसके मज्जातन्तु बेकार हो गये थे। उसे चारों ओर निराशाही निराशा दीख पड़ती थी। उसके देखनेवालोंको वह रोग, व्यथा एवं अनुत्साहकी साक्षात् मूर्ति दृष्टिगत होता था। वही मनुष्य जब उस सर्वशक्तिमान् परमात्मासे एकताका अनुभव करने लगा, तब दैवी शक्तियाँ और दैवी आरोग्य उसके अन्तःकरणमें जाग्रत हुए। अब जब-जब वह हमसे मिलता है, तो कहता है कि संसार असार नहीं है, वह केवल सुखमय है। हमारा परिचित एक अफसर है। वह कहता है कि, जब मैं अपने कर्त्तव्यसे निवटकर सन्ध्याको घर जाता हूँ, तब अगाध सामर्थ्यमय और शान्तिमय परमात्माकी एकताकी लहरें इतने ज़ोरसे मेरे अन्तःकरणमें लहराने लगती हैं कि, मुझे इस बातकी सुधही नहीं रहती कि, मैं ज़मीन पर चल रहा हूँ या कोई शक्ति मुझे आस्मानकी तरफ ले जा रही है।

ईश्वरीय एकता अनुभव करनेवाले मनुष्यको किसीका भय नहीं रहता; क्योंकि वह जानता है कि जिससे मेरी

एकता हो गयी है, वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा मेरी रक्षा करनेवाला है। इस बातका जिसे पूर्ण विश्वास हो गया है, उस मनुष्य पर अस्त्र-शस्त्रका कुछ भी आघात नहीं होता, उसके निवास-स्थानपर कभी रोगोंका आक्रमण नहीं होता और सिंह व्याघ्रादि हिंसक जन्तु उसके निकट आतेही पालतू कुत्तेके समान हो जाते हैं। सारांश यह कि, उसके आनन्द एवं शान्तिको भङ्ग करनेवाला इस संसारमें कुछ भी नहीं रहता। इस प्रकारकी अमोघ शक्ति उसके जीवनमें आ जाती है।

जिसको ईश्वरीय एकताका अनुभव नहीं है, उसकी अवस्था उपयुक्त अवस्थावाले मनुष्यके बिल्कुल विरुद्ध होती है। उसको सबसे भय लगता है और जब कोई किसीसे डरता है, तो समझना चाहिये कि वह स्वयं उसके प्रवेशार्थ अपने हृदय-मन्दिरका द्वार खोलता है। हिंसक जन्तु उस मनुष्यको कभी आघात नहीं पहुँचाते, जो उनसे निर्भय रहता है। जब कोई मनुष्य किसीसे डरता है, तो समझना चाहिये कि वह अपने को उसके अभिमुख करता है। कुत्ते जैसे कितनेही प्राणी तो भयको इतनी जल्दी ताड़ जाते हैं कि, वे भयभीत मनुष्य को काटनेका साहस कर बैठते हैं। हम उस अनन्त जीवन परमात्मासे जितनीही एकता करेंगे, उतनेही हम शान्त एवं गम्भीर होंगे और जो छोटी-छोटी बातें हमें पहले बहुत सताती थीं उनसे बच जावेंगे। ईश्वरीय एकता अनुभव करनेसे दूसरेके अन्तःकरणके भावोंको जान लेनेकी शक्ति हमें प्राप्त हो जावेगी।

एक दिन एक गृहस्थ हमारे एक मित्रसे मिला। बाहरी शिष्टाचार दिखाकर वह हमारे मित्रसे बोला कि आपके दर्शनोंसे मुझे बहुत हर्ष प्राप्त हुआ; परन्तु हमारे मित्रने विद्युत् गतिसे—बहुत शीघ्र उस मनुष्यके विचार ताड़ लिये और कहने लगा कि तुम्हें मेरे मिलनेसे आनन्द प्राप्त हुआ, यह बात झूठ है; उलटे तुम मेरी भेंटसे दुःखी हुए हो, यह तुम्हारी मुखमुद्रासे साफ झलकता है। तब वह गृहस्थ बोला कि इस ऊपरी शिष्टाचारके जमानेमें मनमें कुछ भी हो, ऊपरसे तो आनन्दही दिखाना चाहिये। हमारा मित्र बोला कि तुम भारी भूल करते हो। क्योंकि तुम्हारे हृदयमें एक बात और बोलनेमें दूसरी बात है—खानेके दांत और, दिखानेके और हैं। यदि ऐसी कुटिलता छोड़कर जो कुछ मनमें हो, उसे स्पष्ट कह देनेका निश्चय तुम कर लोगे; तो तुम्हें अपना महत्त्व मालूम होने लगेगा और इस प्रकारके सदाचारसे तुम्हारा बहुत कल्याण होगा। तुम मेरा यह उपदेश हमेशा ध्यानमें रक्खो।

जब हमें लोगोंकी सच्ची-सच्ची परीक्षा करनेका ज्ञान हो जावेगा, तब लोगोंमें हम उन गुणोंको न देखेंगे जिनका कि उनमें अभाव है, इससे कभी हमें धोखा न होगा। "भ्रमकी पोल आज नहीं, तो कल जरूर खुलेगी" यह सृष्टि-नियम यथार्थ है। दूसरेकी परीक्षा कैसे करनी चाहिये, इस बातका ज्ञान न होनेसे हम मनुष्यकी अतिरिक्त प्रतिष्ठा करने लगते हैं; जिससे हम उसके हितचिन्तक बननेके बदले उसके हित-

शत्रु बन जाते हैं। शान्ति-स्वरूपी परमात्मासे जब हमारा ऐक्य-भाव हो जावेगा, तब किसीने हमारा बुरा किया है, यह कुतर्क हमारे मनमें उल्लासितही न होगा। अखिल विश्वका एकीकरण और नियमन करनेवाले परमात्माके दिव्य सत्य और न्यायके अनुसार जहाँ हमने अपना आचरण बनाया कि, फिर हमारी शान्ति भङ्ग न होगी; क्योंकि ईश्वरीय सत्य और न्यायकीही अन्तमें विजय होती है।

सच्चा विज्ञान जिसे प्राप्त हो गया है, उसे अपने प्रिय मित्रों को अथवा सम्बन्धियोंकी मृत्युसे एवं आधि-व्याधिसे व्याकुलता नहीं होती; क्योंकि वह अपने विज्ञान-बल द्वारा विश्वके सच्चे रहस्यका एवं अपने सच्चे स्वरूपका भली भाँति ज्ञान रखता है। परमात्माकी उच्च शक्तियोंका जिसे भली भाँति अनुभव हो गया है, उसे अपने प्रिय मित्रोंके देह-परिवर्त्तनका—जिसे बोल चालमें मृत्यु कहते हैं—कुछ भी दुःख या शोक नहीं होता; क्योंकि वह इस बातको भली भाँति जानता है कि मृत्यु कोई पदार्थही नहीं है, वह केवल देह-परिवर्त्तन है। वह भली भाँति जानता है कि, प्रत्येक प्राणीको अनन्त चैतन्यका उपभोग निरन्तर मिलता रहता है—उसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ सकती।

यह जड़ शरीर मृत्यु-मुखमें पड़े तोभी सत्य और अक्षय आत्माको किसी प्रकारका धक्का नहीं पहुँचता, यह बात बुद्धिमान मनुष्य भले प्रकार जानता है। उच्च ज्ञानके कारण

उसका मन निरन्तर शान्त रहता है। दूसरोंके मित्र-विरहसे उद्विग्न मनको वह इस प्रकारके वाक्योंसे शान्ति प्रदान करता है—हे मित्रो और बन्धुओ! तुम्हारे प्रिय मित्रका यह मृतक शरीर उस सीपके समान है, जिसका अमूल्य मोती निकाल लिया गया है; तुम वृथा इसके लिये शोक करते हो। शरीर-रूपी सीपके भीतरकी आत्मा तो अजर अमर है। इस निकम्मे शरीरको जलाया तो क्या? इसे गाड़ दिया तो क्या? अथवा इसमें मसाला भरकर रख दिया तो क्या? उस आत्माके लिये सब एकसा है। जब तुम्हें आत्माके अजर अमर होनेका ज्ञान हो जायगा, तो तुम्हें स्वयं मालूम होने लगेगा कि देह-पतनकी फ़िक्र करना वृथा है। कितनेही लोग ऐसा कहते हैं कि, यह बात हम मानते हैं कि मृतकी आत्मा अविनाशी है; तोभी हम जड़ शरीरधारी होनेसे मृतके समागम-सुखसे विहीन रहते हैं; परन्तु यह ख़याल भी ठीक नहीं है। जड़ शरीरधारी होकर भी मनुष्य अशरीरी आत्मासे समागम-सुखका अनुभव कर सकता है। अवश्यही ईश्वरीय एकताका ज्ञान न होनेसे मनुष्यमें वह शक्ति गुप्तरूपसे विद्यमान रहती है। जितनाही ज़ियादा हम ईश्वरके साथ अपना सम्बन्ध करते जावेंगे, उतनी-ही वह गुप्त शक्ति हममें प्रकट होगी।

जिसपर हमारा दृढ़ विश्वास हो जावेगा, वह हमें अवश्यमेव प्राप्त होगा। प्राचीनकालमें लोग ईश्वरीय दूतोंको—खुदाई फ़रिश्तोंको देखनेकी प्रबल आशा रखते थे; इससे वे उन्हें देख

भी सकते थे । परन्तु इसका कोई विशेष कारण नहीं है कि, वे उन्हें क्यों देखते थे और हम आजकल क्यों नहीं देखते हैं। क्योंकि सृष्टिका नियमन करनेवाला महानियम जैसा पहले था, वैसाही अब भी है। जिस पद्धतिका पहलेके लोग अनुसरण करते थे, उसीका हम भी करेंगे ; तो हम भी निश्चयही उन्हें देखनेमें समर्थ होंगे ।

शान्ति स्वरूपी परमात्मासे जितना अधिक हम अपना सम्बन्ध करते जावेंगे ; उतनेही हम शान्त-स्वरूप होते जावेंगे । फिर तो जिस प्रकार कस्तूरीमृग जहाँ कहीं जाता है, वहाँही कस्तूरीकी अलौकिक सुगन्ध फैलाता है ; उसी प्रकार जहाँ कहीं हम जावेंगे, वहीं शान्तिकी लहरें लहराने लगेंगी । आन्तरिक शान्ति जितनी हम बाहरी जगत्में फैलाते हैं ; उतनीही बाहरी जगत्की शान्ति हमारी ओर आकर्षित होती है। इस प्रकार बाह्य शान्तिके आकर्षणसे आन्तरिक शान्ति वृद्धिङ्गत होती रहती है।

"तदहमस्मि" वेदान्तके इस सारभूत रहस्यको जिन्होंने अपने जीवन-क्रममें दाखिल किया है, वे महात्मा जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ-वहाँ आनन्द,शान्ति,धैर्य्य,शक्ति एवं आशाकी वर्षा होती रहती है । "एकमेवाद्वितीयं" यानी सारे विश्वमें जो केवल एकही है—जिसके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है, उस परमात्माका इसी "तदहमस्मि" सूत्रके तत् शब्दसे संकेत किया गया है । उसी परमात्मामें सारे चराचरकी स्थिति है । जगत्के सब

व्यवहारोंका सञ्चालक वही है। अतएव जिसके आचार-विचार में ईश्वरीय एकता दिखाई देती है, वही सच्चा महात्मा है।

ऐसे महात्माओंकी शक्तिकी कोई सीमा नहीं है। इसका कारण यह है कि, सर्व महाशक्तियोंके उद्गम-स्थान परमात्मासे उसका सम्बन्ध है—उसकी एकता है। चुम्बक जिस प्रकार लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है; वैसेही सच्चा महात्मा विश्वकी चाहे जिस शक्तिको अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। "तत्त्वमसि" इस वेदान्त-रहस्यका ज्ञान जिसे भली भाँति हो गया है, उसकी शक्ति असीम एवं अपरम्पार होती है और जिन विचारोंका उद्भव उसके मनमें होता है, वे निस्सन्देह उत्साह-जनक, सामर्थ्यवान् एवं आरोग्यशाली होते हैं।

"जिसके पास है, उसे ही परमात्मा देता है" यह लोकोक्ति अक्षरशः सत्य है और सृष्टि-नियम भी इसके अनुकूलही है। सम्पत्तिवानको अधिक सम्पत्ति प्राप्त होती है, यह बात सृष्टि-नियमके प्रतिकूल नहीं है, वरन सर्वथा अनुकूल है; क्योंकि सम्पत्तिवानके मनमें निरन्तर समृद्धिशाली विचारोंका प्रवाह बहता रहता है। वैसेही समर्थके मनमें निरन्तर सामर्थ्य-परिपूर्ण विचारोंका वेग दौड़ता रहता है और उसी प्रकारके सजातीय बाह्य विचारोंको उसके मानसिक विचारोंको सहायता प्राप्त होती रहती है।

पैसेके पास पैसा, ज्ञानके पास ज्ञान और बलके पास बल जाता है, यह सृष्टि-नियमके सर्वथा अनुकूल है। धनवानोंको

ज्ञानियोंको एवं बलवानोंको उनके प्रबल विचारही चारों ओरसे मनमानी सहायता प्राप्त करानेमें सहायक होते हैं। जिन-जिन वस्तुओंकी जिन्हें आवश्यकता होती है, उनकी कल्पना वे अपने मनमें पक्की कर लेते हैं; परन्तु उनको मूर्त्ति-स्वरूप देनेका—बाह्य दृश्य विश्वमें प्रकट करनेका—काम उनके प्रबल और यशप्रदायी विचारोंके द्वाराही होता है। सूक्ष्म और अदृश्य विचार-शक्तिका उपयोग होने लगे, तो फिर उसका स्थूल कार्य आज नहीं तो कल ज़रूर प्रकट होने लगेगा।

समर्थ के मनमें भय और अपयशके विचार कभी नहीं आते। शायद कभी उनका प्रादुर्भाव हो भी जावे, तोभी वह उन्हें तत्काल अपने मनसे निकाल देता है। अतएव इस प्रकारके निकृष्ट बाह्य विचारोंका असर कभी उसके मनपर नहीं होता। दौर्बल्य एवं अनुत्साहके विचारोंसे वह सर्वथा विमुख रहता है, अतएव ऐसे विचार उसकी ओर जानेही नहीं पाते।

विचार घनात्मक होते हैं अर्थात् वे जैसे होते हैं वैसेही विचार भीतर पैदा करते हैं और वैसेही विचार बाहरसे खींचते हैं। प्रबल विचार भीतर अपने जोड़के विचार पैदा करते हैं और बाहरसे वैसेही विचारोंको अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। निर्बल विचार हृदयमें निर्बलता उत्पन्न करते हैं और बाह्य जगत्से भी वैसेही विचार आक-

दित करते हैं। धैर्यसे बल प्राप्त होता है और भयसे अपयश मिलता है। बलकी उत्पत्ति धैर्यसे है और अपयश एवं दौर्बल्यकी उत्पत्ति भयसे है।

जिनके संकल्प सत्य हैं—जिनकी प्रतिज्ञा दृढ़ है, उन्हीं धैर्यशाली पुरुषोंकी सत्ता अपनी परिस्थिति पर चलती है और संसारमें बड़े पराक्रमके जो महान कार्य होते हैं, वे ऐसेही पुरुषोंके हाथसे होते हैं। परन्तु जिनके संकल्प डगमगाते हुए हैं, जिनका धैर्य टूट गया है, वे पुरुष निरन्तर अपनी परिस्थितिके दास बनकर रहते हैं; क्योंकि संशय और भयके कारण उनका मन जर्ज्जर और दुर्बल हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्यकी जो-जो स्थिति प्राप्त होती है, उसका कर्त्ता वह स्वयं है। इससे यह बात स्पष्ट है कि, हरेक मनुष्य अपनी अभिलषित स्थिति प्राप्त कर सकता है। इस स्थूल और दृश्य विश्वकी प्रत्येक वस्तुका कारण सूक्ष्म और अदृश्य जगत्‌में है। विचार-सृष्टि कारणरूप है और दृश्य-सृष्टि कार्य्यरूप है। कारणका जैसा स्वभाव, जैसा गुण और जैसा धर्म होता है; वैसाही स्वभाव, वैसाही गुण और वैसाही धर्म उसके कार्य्यका होता है। हमारा आयुःक्रम हमारी अदृश्य विचार-सृष्टिमें जैसा रहता है; वैसाही दृश्य सृष्टिमें प्रकट होता है। यदि दृश्य-सृष्टिमें प्रकट होनेवाले अपने आयुःक्रममें कुछ फेरफार करना हो, तो विचार-सृष्टिके आयुः-क्रममें फेरफार करना आवश्यक है।

हताश मनुष्य यदि हमारे इस कथनके अनुसार चलेंगे, तो उनकी निराशा नष्ट हो जावेगी। वे आशान्वित और यशस्वी बनेंगे। पहलेसे वे उत्कृष्ट और बलवान् होंगे, उनके सब प्रकारके दुःख एवं अस्वस्थता नष्ट हो जानेसे वे अपूर्व शान्ति का—अलौकिक आनन्दका—अनुभव करेंगे।

अपने चारों ओर लाखों स्त्री-पुरुषोंको भयसे भयभीत देखकर किस सदय मनुष्यको दया न आवेगी? जिन स्त्री-पुरुषोंको वास्तवमें शक्तिसम्पन्न और पराक्रमी होना चाहिये, वे निरुत्साही एवं साहसहीन दिखाई देते हैं। जिनकी ओर हम दृष्टि डालते हैं, वेही भयसे पूर्णतया त्रस्त दृष्टिगत होते हैं। उनका उत्साह भयके कारण गिरा हुआ दिखाई पड़ता है, उनके यत्न भयके कारण निष्फल होते हैं। उन्हें चारों ओर भय ही भय दिखाई पड़ता है। किसीको न्यूनता का भय, किसीको भूखे मरनेका भय, किसीको लोगोंके बुरा-भला कहनेका भय, किसीको आगेके फिक्रका भय और किसीको बीमारी अथवा मृत्युका भय लगा रहता है। भय बहुतोंकी आदत बन गया है। भयरूपी देवने अपना प्रभाव इतना जमा लिया है कि, हम जहाँ कहीं जाते हैं वह हमारे साथ ही लगा रहता है। हमपर फलानेकी नाराज़ी होगी, हम निर्धन हो जायँगें, हम नौकरीसे अलग कर दिये जायँगे, हमारा रोज़गार डूब जायगा, आदि अनेक प्रकारके भयपूर्ण विचार जहाँ हमने अपने मनमें उद्भासित होने दिये कि, बस जिस

कुदशासे हम डरते हैं, वह हाथ धोकर हमारे पीछे पड़ जाती है।

भयसे किसी प्रकारका लाभ नहीं है; परन्तु हानिमात्र है। कितनेही लोग कहते हैं—"हम जानते हैं कि भयसे हानि ही हानि है; परन्तु क्या करें, उसे त्यागनेकी सामर्थ्य हममें नहीं है।" ऐसा कहनेवालोंमें—समझना चाहिये कि—आत्मज्ञानका किञ्चित अंग भी नहीं है। जब हमें अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान भली भाँति हो जावेगा, तब हमें अपनी प्रचण्ड शक्तिकी पूरी जानकारी हो जावेगी। उस दिव्य शक्तिका जहाँ हमें ज्ञान हुआ और उसका हम सदुपयोग करने लगे कि, फिर तो भयको वहाँसे कूच ही करना पड़ेगा। "भय जीता नहीं जा सकता", ऐसी भावना रखनेसे वह अधिकाधिक अपना आधिपत्य जमाता है।

अतएव अपने मनमें यह ख़याल रक्खो कि, तुम कर सकते हो। अगर आवश्यक हो, तो इसे सब विचारोंका बीज समझो; अपने विवेकमें इसको उगने दो, इसे सींचते रहो और पोषण करते रहो। यह धीरे-धीरे चारों ओर फैल जावेगा और मज़बूत हो जावेगा। जो आत्मिक शक्ति तुम्हारे अन्दर इधर-उधर बिखरी हुई है और निकम्मी हो रही है, उस शक्तिको यह मूल विचार एक जगह एकत्रित कर देगा और उसे तुम्ल और प्रभावशाली बना देगा। वह शक्ति बाहरकी शक्तिको अपनी ओर खींचेगी और अपने समान उन मस्तिष्कोंके प्रभा-

वको अपना सहायक बना लेगी—जो निडर, बलवान् और साहसी हैं। इस प्रकार तुम इसी श्रेणीके विचारोंसे अपना सम्बन्ध जोड़ लोगी। अगर तुम अपने काममें सरगरम और पक्के हो, तो वह समय शीघ्रही आवेगा कि जब सारा डर जाता रहेगा और पस्त-हिम्मती और गुलामीकी दशाके बदले तुम अपनेको अपार शक्तिशाली और स्वाधीन देखोगी।

हमें प्रति दिनके जीवनमें अधिक विश्वासकी आवश्यकता है। जो शक्ति सबकी भलाईके काम कर रही है उसमें—अनन्त परमात्मामें—और इसीलिये अपने आपमें विश्वास लानेकी आवश्यकता है; क्योंकि हम उसीकी मूर्त्ति हैं। चाहे समयके अनुसार चीज़ें किसी दशामें हों और सूरतें चाहे कैसीही भयावनी हों, परन्तु इस बातका ज्ञान कि "सर्वशक्तिमान् परमात्मा हमारा उसी तरह संरक्षक है, जिस तरह कि उसे सब विभिन्न ब्रह्माण्डोंकी प्रणाली और उसके सूर्य्योंका ख़याल है" हममें यह श्रेष्ठ विश्वास उत्पन्न करेगा कि, संसारकी तरह हमारी दशा भी सही-सलामत है। तब जिस मनुष्यका मस्तिष्क हमारे आधार पर है, उसे हम पूरी-पूरी शान्तिमें रक्खेंगे।

परमात्मासे बढ़कर दृढ़, सुरक्षित और विश्वसनीय और कुछ भी नहीं है। जब हम यह अनुभव करने लगेंगे कि, उस अनन्त शक्तिको अपने अन्दर आने देना हमारे हाथमेंही है और उसका प्रादुर्भाव हम अपने अन्दर अपने द्वारा होने देंगे; तब हम अपने अन्दर सदा एक बढ़नेवाली शक्तिको पावेंगे।

क्योंकि इस प्रकार हम उससे सम्मिलित होकर काम करते हैं और वह हमसे सम्मिलित होकर काम करती है। फिर हम इस बातका पूरा-पूरा अनुभव करने लगते हैं कि, सब चीज़ें मिलकर उन लोगोंकी भलाईके लिये काम कर रही हैं, जो भलाईको पसन्द करते हैं। फिर जो डर और अन्देशे हमें जकड़े हुए थे, वे अब विश्वासमें बदल जावेंगे और विश्वास एक ऐसी शक्ति है कि, वह अगर ठीक-ठीक समझमें आजावे और उसका ठीक उपयोग किया जावे, तो उसके सामने और कोई चीज़ ठहर नहीं सकती।

जड़तासे निराशा और दोषग्राहिता उत्पन्न होती है। इसके सिवा उससे और क्या उत्पन्न हो सकता है? इस बातका ज्ञान कि आध्यात्मिक बल हममें और हमारे द्वारा तथा सब चीज़ोंमें और सब चीज़ों द्वारा काम कर रहा है और यह सत्यताके लिये काम कर रहा है—गुणग्राहिताकी ओर ले जाता है। द्वेष-दृष्टिसे दुर्बलता और गुणदृष्टिसे बल पैदा होता है। जो मनुष्य परमात्मारूपी केन्द्रस्थलसे सम्बन्ध रखता है और उसका पूरा-पूरा भरोसा रखता है, वह हर प्रकारका कष्ट झेल सकता है और हर प्रकारके तूफानका वैसीही गम्भीरता और निश्चिन्ततासे सामना कर सकता है जैसा कि वह अच्छे मौसमका करता है। क्योंकि वह परमात्माके भरोसे निडर हो जाता है और परमात्माकी अन्तर्दृष्टि द्वारा पहलेसेही भविष्य परिणामको जान लेता है। उसे मालूम रहता है

कि, मेरे सहारेके लिये अटूट बल विद्यमान् है। वही मनुष्य परमात्माके भरोसेकी सचाईको भली भांति समझता है। "परमात्मापर भरोसा रख, धैर्य्यसे उसकी अपेक्षाकर, वह तेरी मनोकामना पूरी करेगा।" जो मनुष्य लेनेको तय्यार है, उसको सब कुछ दे दिया जावेगा। इससे बढ़कर और स्पष्ट क्या हो सकता है ?

हम उस सर्वशक्तिमान्से जितनाही मिलकर काम करेंगे, उतनीही हमें उस कामका ख़याल रखनेकी आवश्यकता घट जावेगी। उस सत्यका पूरा-पूरा अनुभव करके जीवन व्यतीत करनेपर पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है—ऐसी शान्ति आती है, जो वर्तमान दशाको पूर्ण बना देती है और आगे जाकर यह दृढ़ विश्वास कराती है कि, ज्यों-ज्यों समय बीतता जावेगा त्यों-त्यों हमारी शक्ति बढ़ती जावेगी। जो मनुष्य परमात्मा पर भरोसा रक्खे हुए है, उसे किसी प्रकारकी अशान्ति या कष्ट हैरान नहीं कर सकता। वह नीचे लिखी बातोंका अनुभव कर सकता है और कह सकता है कि—

"मैं जल्दी नहीं करता, मैं धैर्य्यसे काम करता हूँ, क्योंकि उतावलेपनसे कुछ भी नहीं प्राप्त होता। मैं अनन्त नियमोंमें स्थित हूँ और जो कुछ मेरा है वह अवश्य मुझे मिलेगा। जाग्रत अवस्था हो चाहे निद्रावस्था, रात हो चाहे दिन, मैं जिन मित्रोंको ढूँढ़ता हूँ वेही मुझे भी ढूँढ़ रहे हैं। तूफान या झक्कड़ मेरी नावको भटका नहीं सकता और न मेरे

भाग्यके प्रवाहको उलट सकता है। * * * जैसे समुद्र अपनी-अपनी नदियोंको पहचानते हैं और उनको अपनी ओर खींचते हैं; वैसेही नेकी भी पवित्र आनन्दवाली आत्माकी ओर लेजाती है। जैसे तारें रातको आकाशमें निकलते हैं और ज्वार-भाटेकी लहर समुद्रकी ओर आती है, वैसेही जो मेरा है वह अवश्य मुझको मिलेगा। समय, स्थान, गहराई या ऊँचाईके कारण वह कभी मुझसे दूर नहीं होगा।"

छठा अध्याय ।

पूर्ण शक्तिकी प्राप्ति ।

श्वर अनन्त शक्तिमय है। जिस परिमाणसे हम उस शक्तिसागर परमात्माकी ओर अपना अन्तःकरण खोलेंगे; उसी परिमाणसे उसकी शक्ति हममें प्रकट होगी। ईश्वरके लिये सब कुछ सम्भव है; अतएव उससे एकता होनेसे हमें भी सब कुछ करनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है। सारांश यह कि, अगाधशक्ति परमात्मासे सम्बन्ध करनाही परिपूर्ण शक्ति प्राप्त करनेका उत्कृष्ट मार्ग है। इस उत्कृष्ट मार्गका जहाँ हमें ज्ञान हुआ कि, हमारी शक्तिकी सीमा नहीं रहेगी।

यदि यह बात सत्य है, तो शक्ति-प्राप्तिके लिये इधर-उधर भटक कर व्यर्थ समय खोनेकी क्या आवश्यकता है? इसकी प्राप्तिके लिये आज इसका अभ्यास और कल उसका अभ्यास करनेकी क्या ज़रूरत है? क्यों हम सीधे पहाड़की चोटीपर चढ़ना छोड़कर पगडण्डियों एवं घाटियोंमें घूमते फिरें? संसारकी सब धर्मपुस्तकोंमें मनुष्यका जो सबसे अधिक श्रेष्ठत्व

एवं सर्वोपरि प्रभुत्व दिखाया है, इसका कारण उसकी पशु-प्रकृति नहीं वरन् दैवी प्रकृति है। ऐसे बहुतसे पशु हैं, जिन पर भौतिक दृष्टिसे मनुष्य अपना आधिपत्य नहीं जमा सकता, परन्तु अपनी मानसिक शक्तिको, जो उसे ईश्वरकी ओरसे प्राप्त है, काममें लानेसे उसपर अपना प्रभुत्व प्रकट कर सकता है।

जो कार्य्य शरीरसे नहीं हो सकता, वह मानसिक शक्तिसे हो सकता है। जो मनुष्य जितना अधिक अपने सत्यस्वरूप आत्माका ज्ञान रखता है और उसीके अनुसार अपना आचरण बनाता है, वह उस मनुष्यसे शक्तिमें उतनाही आगे बढ़ा हुआ होगा, जिसे अपने जड़ शरीरके सिवा सत्यस्वरूप आत्माका कुछ भी ज्ञान नहीं है। संसारकी सब धर्मपुस्तकें ऐसे अनेक उदाहरणोंसे भरी हुई हैं, जिन्हें हम 'चमत्कार' कहते हैं। इन चमत्कारोंके लिये कोई विशेष समय अथवा कोई विशेष स्थान नियत नहीं है। यह मालूम नहीं हो सकता कि, अमुक समय चमत्कारोंका है और अमुक नहीं। जो कुछ संसारके इतिहासमें पहले हो चुका है वही, उन्हीं नियमोंको आचरणमें लानेसे, आज भी हो सकता है। ये चमत्कार उन लोगोंके द्वारा नहीं हुए जो मनुष्योंसे बढ़कर थे; परन्तु उन लोगोंने किये हैं, जो ईश्वरसे एकताका अनुभव करके दिव्य मनुष्य बने हुए थे और इसीसे उच्च शक्तियाँ उनके द्वारा काम करती थीं।

अब प्रश्न यह उठता है कि चमत्कार क्यों होते हैं ? क्या चमत्कार कोई अलौकिक पदार्थ है ? साधारण मनुष्यको दैवी स्वभावयुक्त और दैवी शक्तिसम्पन्न मनुष्यकी कार्रवाई अद्भुत और अप्राकृतिक मालूम होती है और इसीलिये वह ऐसी कृतिको लोकोत्तर चमत्कार कहता है। इससे अधिक उसमें कुछ भी अलौकिकता नहीं है। सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परमात्मासे जिन्होंने अपनी एकता कर ली है, उन महात्माओंको अनेक प्रकारके ईश्वरीय नियम और शक्तियोंका ज्ञान होता है एवं वे उनका उपयोग भी करते रहते हैं। जिनकी बुद्धि अल्प है—जिनकी शक्ति सीमाबद्ध है, वे लोग जब इन महात्माओंको उक्त ईश्वरीय नियमोंका एवं शक्तियोंका उपयोग करते हुए देखते हैं, तब उनकी बुद्धि चकरा जाती है और अपनी बुद्धिसे अगम्य उन महात्माओंके कार्यों को वे चमत्कार कहते हैं और ऐसे चमत्कार करनेवालोंको लोकोत्तर पुरुष कहते हैं, परन्तु यदि वेही लोग अपनी आन्तरिक शक्तिके द्वारा उन नियमोंका अनुसरण करें जिनका कि अद्भुत चमत्कार करनेवाले दिव्य मनुष्य करते थे, तो वे भी वैसेही अलौकिक काम करने लगेंगे। हमें यह बात स्मरण रखना आवश्यक है कि, विकाश-क्रमके अनुसार मनुष्य नीची दशासे ऊँची दशाको प्राप्त होता है, भौतिक दशासे आध्यात्मिक दशामें पहुँचता है और इसी तरह जो शक्ति एक मनुष्य प्राप्त कर सकता है, वह दूसरोंको भी प्राप्त हो सकती है। प्रत्येक

जीवनमें एकही नियम वर्त्तमान है। हम चाहें तो शक्तिशाली हो सकते हैं अथवा शक्तिहीन हो सकते हैं। जब मनुष्यको इस बातका ज्ञान हो जावेगा कि, वह उन्नति करके ऊँची स्थितिको पहुँच सकता है, तो वह ज़रूर पहुँच जावेगा। और जो सीमा वह अपने लिये निर्दिष्ट करता है, उसके सिवा उसे दूसरी कोई सीमा नहीं रहती। मलाई हमेशा उठकर दूधके ऊपर आजाती है, इसका कारण यही है कि उसका स्वभावही ऊपर उठना है।

हम परिस्थितिके विषयमें बहुत कुछ सुनते हैं। हमें यह बात जानना बहुत ज़रूरी है कि परिस्थितिसे मनुष्य नहीं बन सकता; परन्तु मनुष्य परिस्थितिको अपने वशमें कर सकता है। जब हमें इस बातका ज्ञान भली भाँति हो जायगा, तब हमें मालूम होगा कि बहुत समय हमें किसी विशेष परिस्थितिसे बाहर निकलनेकी आवश्यकता नहीं रहती; क्योंकि वहाँ हमको कुछ काम करना पड़ता है, परन्तु जो शक्ति हममें वर्त्तमान है उसके द्वारा हम इन मामलोंको बदलकर पुरानी परिस्थितिमेंही नयी दशा प्रकट करदेंगी।

यही बात 'आनुवंशिक संस्कार' के विषयमें भी है। हमसे प्रायः यह भी प्रश्न पूछा जाता है कि, क्या हम इनपर जय पा सकते हैं? जिसे अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान नहीं है, वही ऐसा प्रश्न करता है। यदि हम इस विश्वासमें रहें कि, इनपर हम जय नहीं पा सकते, तो संभव है कि इनपर हम जय न पासकें

और वे ज्योंके त्यों बने रहें। जब हमें अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान हो जावेगा—हम आन्तरिक प्रचण्ड शक्तियोंको पह-चानेंगे तो आनुवंशिक संस्कार स्वयमेव कम होने लगेंगे, जो स्वभावतया हानिकर हैं। ज्यों-ज्यों हम अपने आत्मस्वरूप और शक्तियोंको पहचानने लगेंगे; त्यों-त्यों ये हानिकर प्रकृतियाँ नष्ट होती जावेंगी। ऐसे बहुतसे लोग हैं जो बहुतही निकृष्ट जीवन व्यतीत करते हैं; इसका कारण यही है कि वे अपने व्यक्तिस्वातन्त्र्यको दूसरोंके अधीन कर देते हैं। यदि तुम संसारमें शक्तिशाली होना चाहते हो, तो तुम अपने साहसके द्वारा ऐसे बन सकते हो। अपनेको साधारण मनुष्योंमें मत गिनो और यह न कहो कि, हम छोटे लोगोंमें से हैं। तुम्हारी आत्मामें जो-जो सर्वोत्कृष्ट तत्त्व हैं, उनपर जमे रहो और फिर किसी रस्म, रिवाज, रीति या मनुष्यके गढ़न्त कायदोंपर मत चलो; क्योंकि किसी तत्त्वके आधार पर वे नहीं हैं। तुम्हारा व्यक्तिस्वातन्त्र्यही तुम्हारी शक्तिका सबसे बड़ा द्वार है। इसको छोड़कर उन रस्म-रिवजोंको अङ्गीकार मत करो, जो ऐसे लोगोंने बनाये हैं जिनमें अपने तत्त्वोंपर कायम रहनेकी शक्ति नहीं है या जिन्होंने अपने व्यक्तिस्वातन्त्र्यको दूसरोंके हाथ बेच डाला है। यदि तुम अङ्गीकार करोगे, तो तुम बुरी दशाको बढ़ानेमें सहायक होगे—तुम गुलाम बन जाओगे और ज़रूर एक वक्त ऐसा आवेगा कि जिन लोगोंको तुम खुश करना चाहते हो, वे भी तुम्हारा आदर न करेंगे।

यदि तुम अपने व्यक्तिस्वातन्त्र्यको कायम रक्खोगे तो स्वामी बन जाओगे और यदि तुम बुद्धिमत्ता और सावधानीसे काम करोगे, तो तुम अपने प्रभाव एवं शक्तिके द्वारा संसारमें उत्तम और आरोग्यशाली दशाएँ प्रकट करोगे। इसके सिवा ऐसा करनेसे सब लोग तुम्हारा लिहाज़ और आदर करेंगे। यदि तुम अपने सिद्धान्तोंको छोड़कर दूसरोंके साथ भेड़िया-धसानकी तरह मिल जाओगे और अपनी कमज़ोरीके कारण उनके बनाये हुए रस्म-रिवाजों को उत्तेजना दोगे, तो तुम्हारा आदर न होगा। सच्चा वीर मनुष्य तमाम फ़िरक़ोंके लोगोंको अपनी तरफ़ झुका लेता है। हम यहाँ तक कह सकते हैं कि, कुत्ते भी ऐसे मनुष्यका विश्वास करने लगते हैं।

अपने व्यक्तिस्वातन्त्र्यको बनाये रखना एक प्रशंसनीय बात है। एक मनुष्य इस प्रकार कहता है—"क्या यह उम्दा पालिसी नहीं है कि, एक मनुष्य कभी-कभी अपने आसपासके लोगोंके कहनेपर चले और उनकी बातें मानले?" उमदा पालिसी क्या है? खुद अपने सिद्धान्तोंपर कायम रहनाही उम्दा पालिसी है।

जब हम ईश्वरीय उच्च अस्तित्वके अभिमुख होते हैं—जब हमारा जीवन एक तत्त्वपर अवलम्बित रहता है, तब हमें इस बातका डर नहीं रहता कि सब लोग हमारे वास्ते क्या राय रखते हैं अथवा लोग हमसे नाराज़ हैं कि प्रसन्न। हमें पूरा विश्वास रहता है कि, ईश्वर हमारी सहायता करेगा।

यदि हम इस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहें कि लोग हमसे खुश रहें, तो इस तरह हम कभी उन्हें खुश न कर सकेंगे। जितनाही हम ऐसा प्रयत्न करेंगे, उतनेही वे हमसे नाराज़ रहेंगे। तुम्हारे लिये अपने जीवनपर हुकूमत करना ऐसी बात है, जो बिल्कुल तुम्हारे और ईश्वरके बीचमें है और यदि तुम्हारे जीवनपर किसी दूसरे हारसे प्रकाश पड़ा हो तो समझ लो कि तुम ग़लत रास्तेमें पड़े हुए हो। जब हमें अपने आन्तरिक राज्यका पता लग जाता है—जब हम अनन्त जीवनमें मिल जाते हैं, तब हम अपने सहायक आप बन जाते हैं, तब तो हम उन लोगोंको जो क्षुद्र नियमोंके गुलाम हैं, उच्च नियमोंका ज्ञान करानेमें समर्थ होते हैं।

जब हम इस केन्द्रको जान लेते हैं, तब वह सुन्दर सादगी—जो बड़े आदमियोंका व्यक्तिगत गुण है और उनके लिये जादू और शक्तिका काम देती है—हमारे जीवनमें आती है। फिर हम आडम्बर या बनावट करनेकी चेष्टा नहीं करते; क्योंकि इससे दुर्बलता, पस्तहिम्मती और असली शक्तिकी कमी प्रकट होती है। इससे उस मनुष्यकी याद आती है, जो दुमकटे घोड़ेकी पीठपर सवार होता है। वह मनुष्य इस बातको जानता है कि, मैं पस्तहिम्मत और कमज़ोर आदमियोंमेंसे हूँ और मुझमें ऐसी कोई विशेषता नहीं है कि, जिससे लोगोंका ध्यान मेरी ओर खिंचे। इसलिये वह यह जंगलीपन अख्तियार करता है कि, अपने घोड़ेकी दुम काट-

डालता है, ताकि घोड़ेकी विचित्र शकलके कारण लोगोंका ध्यान उस आदमीकी ओर खिंचे; क्योंकि वह स्वयं इस योग्य नहीं कि लोगोंका ध्यान अपनी ओर खींच सके।

जो मनुष्य बनावटी चाल चलता है, वह दूसरोंको उतना धोखा नहीं दे सकता, जितना कि वह स्वयं धोखा खाता है। जो मनुष्य—स्त्री या पुरुष—सच्चे बुद्धिमान और दीर्घदर्शी हैं, वे लोगोंके कामोंकी बाबत तुरत ताड़ जाते हैं कि किन कारणों और उद्देश्योंसे वे काम किये जाते हैं। बड़ा वही है जो अपनी असली सादगी पर क़ायम है और दूसरोंकी नक़ल नहीं करता। वे स्त्रीपुरुष जिन्हें अपनी सच्ची शक्तियोंका ज्ञान है ऐसे दीख पड़ते हैं, मानो वे बहुत कम कार्य कर रहे हैं; परन्तु कुछ गहरी दृष्टिसे देखनेपर मालूम होगा कि वे बहुत कुछ कर रहे हैं। वे अपना काम ऊँचे भुवनोंपर कर रहे हैं। वे अनन्त जीवनके साथ अपना पूरा सम्बन्ध रखते हैं; अतएव अनन्त शक्ति उनके लिये काम करती है और इससे वे हरेक तरहकी ज़िम्मेवरीसे बरी हो जाते हैं। वे लोग बेपरवा रहते हैं। इसका कारण यही है कि, अनन्त शक्ति उनके द्वारा काम करती है और वे केवल उस अनन्त शक्तिके साथ मिले हुए हैं।

सर्व्वोच्च शक्ति प्राप्त करनेका मन्त्र यह है कि, बाहरके कामोंसे भीतर काम करनेवाली शक्तिका सम्बन्ध हो। यदि तुम चित्रकार हो, तो तुम्हें यह बात ध्यानमें रखना आवश्यक

है कि तुम अपनी आन्तरिक शक्तियोंका जितना उपयोग करोगे, उतनेही ऊँचे दर्जेके चित्रकार बनोगे। जो प्रेरणाएँ तुम्हें अपनी आत्माके द्वारा होती हैं, वेही सर्वोत्कृष्ट हैं। इनसे अच्छी कोई प्रेरणा नहीं है, जिसको तुम किसी स्वरूपमें स्थायी रूपसे प्रकट कर सको। अपनी आत्मासे सर्वोत्कृष्ट प्रेरणाएँ प्रकट करनेके लिये तुम्हें चाहिये कि अपनी आत्माको खोल दो—तुम अपने अन्तःकरणको सब उच्च प्रेरणाओंके आदिकारणकी ओर अभिमुख करो। क्या तुम वक्ता हो? तो जिस परिमाणसे तुम अपने द्वारा बातचीत करनेवाली उच्च शक्तियोंसे मिलकर काम करोगे—उनके साथ प्रेम करोगे, उसी परिमाणसे तुम्हें मनुष्योंका आचरण सुधारनेकी शक्ति प्राप्त होगी। यदि तुम केवल चिल्लाने और ज़ोर-ज़ोरसे हाथ पाँव मारने पर ही बस करोगे, तो तुम्हारे भाषणका असर केवल बाज़ारू लोगों पर ही होगा। यदि तुम इसलिये अपना अन्तःकरण खोल दो कि तुम्हारे द्वारा ईश्वरीय ध्वनि प्रकट हो, तो तुम बड़े और सत्यवक्ता बन जाओगे।

क्या तुम गवैये हो? यदि तुम गवैये हो, तो ईश्वरकी ओर तुम आपना अन्तःकरण खोलो। ईश्वरीय आत्माको सुरके स्वरूपमें प्रगट करो। इससे तुम्हें हज़ार गुनी आसानी मालूम होगी और तुम्हें इस क़दर राग गानेकी शक्ति प्राप्त हो जावेगी कि, सुननेवालोंपर उसका बहुत प्रभाव पड़ेगा।

गरमीके दिनोंमें जब हमारा तम्बू किसी जङ्गलमें खड़ा किया जाता है, तब हम कभी-कभी प्रातःकालके समय अपनी चारपाईपर पड़े हुए जागते रहते हैं। पहले तो बिलकुल शान्तिका समय होता है, परन्तु पीछे कहीं-कहीं और कभी-कभी चीं-चीं की आवाज़ सुनाई देती है और जब सुबहके खिलने वाले रङ्ग कुछ-कुछ दिखाई देने लगते हैं, तब यह चीं-चीं की आवाज़ बार-बार सुनाई पड़ती है। यहाँ तक कि धीरे-धीरे कुल जङ्गल मिलकर खूब ज़ोर-शोरसे गाता हुआ मालूम होता है। उस वक्त ऐसा मालूम होता है मानो वृक्ष, पत्ते और झाड़ियाँ ज़मीन और आसमान सब इस अद्भुत रागमें शरीक हैं। हमने ख्याल किया कि क्याही अलौकिक राग चल रहा है।

एक दिन एडिनबरामें एक भारी सभा हुई। उसमें डाक्टर बूनरने "सच्चे चरवाहे" पर एक अत्यन्त प्रभावशाली वक्तृता दी। उसके समाप्त होनेके बाद मोडी साहबने अपने एक साथीको गानेका सङ्केत किया। उसके मनमें "तेई-सवें पदके" गानेका विचार आया; परन्तु इसे पहले वह कई बार गा चुका था। फिर उसके मनमें यह विचार आया कि मुझे राग तो मालूम नहीं है, मैं उन पदोंको किस तरह गा सकूँगा। परन्तु पीछे उसका यही विचार हुआ कि चाहे वे किसी रागनीमें हों, मैं उन्हींको गाऊँगा। उसने इन पदोंको अपने आगे रख लिया। बाजा बजने लगा और वह मुँह खोलकर गाने लगा। उसने पहला पद पूरा किया। लोग

चुपचाप सुनते रहे। फिर उसने एक दीर्घ श्वास लिया और आश्चर्य से मनही मन कहने लगा कि, क्या मैं इसी तरह गा सकूँगा? उसने उसे उत्तमतासे गानेका प्रयत्न किया। कहना नहीं होगा कि, वह इस प्रयत्नमें सिद्ध-मनोरथ हुआ। इसके बाद गाना आसान था। जब वह सारा भजन गा चुका, तो उसका इतना प्रभाव पड़ा कि सारीकी सारी सभा दङ्ग रह गयी और सब लोग आनन्दाश्रु बर्षाने लगे। सेंकी साहब कहते हैं कि, यह मेरे जीवनका बहुतही नाज़ुक मौका था। मोडी साहबने कहा कि मैंने ऐसा गाना कभी नहीं सुना। यह गाना हरेक सभामें गाया गया और शीघ्रही इसकी ख्याति सारे संसारमें होगई।

जब हम सर्वोत्कृष्ट प्रेरणाके प्रवेशार्थ अपने हृदय-मन्दिरको खोल देंगे, तो वह वहाँ ज़रूर प्रवेश करेगी। यदि हम ऐसा करनेमें भूल करेंगे, तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।

यदि तुम ग्रन्थकार हो और यह चाहते हो कि हम ऊँचे दर्जेके ग्रन्थकार हों, तो तुम उन्हीं विचारोंको लिखो जो तुम्हारे अन्तःकरणमें प्रकट हों। इसमें किसी तरहका भय मत रक्खो। अपनी आत्माके शिक्षणपर ठीक-ठीक ध्यान रक्खो। स्मरण रक्खो कि कोई भी ग्रन्थकर्त्ता, जैसा कि वह स्वयं है उससे ज़ियादा नहीं लिख सकता। यदि वह ज़ियादा लिखना चाहे या ख़यालात ज़ाहिर करना चाहे, तो यह आवश्यक है कि वह स्वयं भी ज़ियादा अच्छा हो। वह बिल्कुलही अपने

भीतरी विचारोंको अक्षरशः नकल करता जाता है। एक तरहसे वह अपने आपको अपनी पुस्तकमें लिखकर ज़ाहिर करता है। जैसा वह ख़ुद है, उससे ज़ियादा वह अपनी किताबमें नहीं लिख सकता।

जिस ग्रन्थकारका सत्त्व ज़बरदस्त है, जिसका उद्देश्य प्रशंसनीय और उदात्त है, जिसके अन्तःकरणकी वृत्ति सूक्ष्म और उन्नत है और जिसका मन निरन्तर दैवी प्रेरणाके अभिमुख होता है उस ग्रन्थकारके ग्रन्थमें अवर्णनीय मर्म भरा हुआ रहता है, उसके ग्रन्थमें कुछ ऐसा प्रभावशाली वर्णन एवं जीवन-शक्ति आ जाती है कि, जिससे उसके पढ़नेवालोंको भी वैसी दैवी प्रेरणाएँ होने लगती हैं, जो लेखकके अन्दर प्रकट हुई थीं। लेखकने अपने ग्रन्थको जिस विचारसे लिखा है, उसे समझनेसे असली शक्ति प्राप्त होती है। इस तरहका असर पैदा करनेसे वह किताब मामूली किताबोंसे बढ़ जाती है और सर्वोपरि पुस्तकोंमें उसकी गणना होती है; यही कारण है कि सौ किताबोंमें उस एक किताबकी बहुत क़दर होती है और कई बार छपकर हाथों-हाथ बिक जाती है। निन्यानवे किताबें ऐसी हैं कि, वे एकही बार छपकर रह जाती हैं।

यही आत्मिक शक्ति है, जिसको अपने आप पर भरोसा करनेवाला ग्रन्थकार अपनी किताबमें डालता है। इसी कारण वह झटपट बिक जाती है; क्योंकि किसी किताबके अधिक प्रचार होनेका यही मार्ग है कि, हरेक मनुष्य उस

किताबको आप पढ़े और दूसरोंको पढ़कर सुनावे। सो जो किताब आत्मशक्तिकी सहायतासे लिखी गयी है, उसका इस तरह बहुत प्रचार हो जाता है—उसकी लाखों प्रतियाँ हाथों हाथ बिक जाती हैं।

अच्छा ग्रन्थकार इसलिये पुस्तक-रचना नहीं करता कि उसकी पुस्तकका साहित्यमें विशेष नाम हो; बल्कि वह इसलिये लिखता है कि उसके विचारका लोगोंके हृदयपर असर हो—लोगोंके विचार उदार हों, उनका जीवन मधुर और परिपूर्ण हो, वे ऊँचे जीवनका ज्ञान प्राप्त कर सकें, और सच्ची गुप्त शक्तियोंको जान सकें। बस यही ऊँचे दर्जेके ग्रन्थकारका उद्देश्य होता है। यदि वह ग्रन्थकार अपने उद्देश्यमें सफल हो जावे, तो उसके ग्रन्थको साहित्यमें उच्च स्थान प्राप्त होगा। यदि वह केवल साहित्यमें नाम पानेके लिये किताब लिखता है; तो खूब समझ लो कि उसकी किताबका साहित्यमें कुछ भी आदर न होगा।

इसके विपरीत जो मनुष्य पगडण्डियोंको छोड़कर इधर-उधर चलनेसे डरता है और जो बने हुए नियमोंका गुलाम रहता है अथवा यों कहो कि जो लकीरका फ़क़ीर है वह अपनी उत्पादक शक्तिको अपनीही बनायी हुई सीमामें रखता है।

जब शेक्सपियर पर यह दोष लगाया गया कि, उसने अपनी किताबोंमें दूसरे ग्रन्थोंसे बहुत कुछ लिया है; तब लेण्डर साहबने

यह उत्तर दिया कि, यद्यपि दूसरे ग्रन्थोंने उसने अपनी किता-बोंमें लिया है, परन्तु उसके स्वतःके विचारोंको ही उनमें अधि-काता है। उसने मृत शरीरमें जीवन-शक्तिका सञ्चार किया। वह इस तरहका मनुष्य है जो संसारके मार्गपर नहीं चलता; बल्कि संसारको अपने मार्गपर चलाता है।

साहित्य-शास्त्रके निश्चित नियमकी शृंखलामें जो फँसा हुआ होता है—जो लोकमतका गुलाम होता है, वह निष्कलङ्क लेखक नहीं कहला सकता। हृदयस्थ सर्वज्ञ परमात्माको अपना गुरु बनाकर, उसके कहनेके अनुसार जो चलता है उस लेख-कको किसी तरहका भय नहीं रहता। ईश्वरीय प्रेरणाके अनु-सार लिखनेवाला ग्रन्थकार अपने ग्रन्थके द्वारा लोगोंका सच्चा कल्याण करता है। नित्यके जीवन-कलहके कारण जो अशा-न्तिमें गर्क रहते हैं—म्लान रहते हैं, वे उसके ग्रन्थके उपदेशा-मृतसे शान्ति प्राप्त करते हैं—अपनी म्लानताको छोड़कर सुखी हो जाते हैं।

यदि तुम किसी धर्मके आचार्य्य हो, तो जो धार्मिक सिद्धान्त मनुष्योंने स्वयं बना लिये हैं—जिनपर बहुतसे मनुष्योंका विश्वास है, उनसे जितना तुम अपनेको बरी समझोगे और जितना तुम दैवी निःश्वासको अपने अन्दर आने दोगे, उतनाही तुम्हारा कहना साधार होगा। जितनाही तुम इस मार्गमें प्रवृत्त होगे, उतनाही तुम भविष्य-वक्ताओंके कहनेका कम विश्वास करोगे और तुम खुद भी भविष्यवक्ता बनने लगोगे।

संसारमें जितने बड़े-बड़े साधु—धर्म्माचार्य्य हुए हैं, उन्होंने स्वतः ऐसा कभी नहीं कहा कि यह बात केवल हमींको प्राप्त है; दूसरे मनुष्यको यह कभी प्राप्त नहीं हो सकती। उन्होंने अक्षय नियमोंका उपयोग किया—दैवी निःश्वासको अपने अन्दर आने दिया, ईश्वरसे अपनी एकताका ज्ञान प्राप्त किया एवं ऊँचे दर्जेका जीवन व्यतीत किया और इन्हीं कारणोंसे वे इतने ऊँचे पदको प्राप्त हुए। हम भी, उच्च जीवन व्यतीत करनेसे, उनके समान बन सकते हैं।
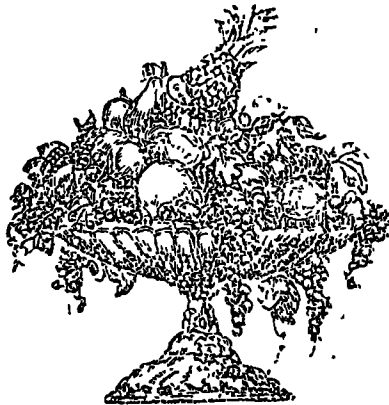
सातवाँ अध्याय।

सब पदार्थोंकी विपुलता—समृद्धिशाली होनेका नियम।
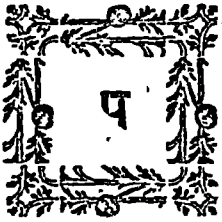
परमात्मा अष्ट-सिद्धि और नव-निद्धिका स्वामी है। इस विश्वकी वस्तुओंको दृश्य रूपमें प्रगट करनेवाला वही है। ऐसे अनन्त शक्तिशाली परमात्मासे जिसकी ऐक्यप्रतीति हो गयी है, वह जैसे चुम्बक लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है, वैसे ही जगत्‌की चाहे जिस वस्तुको अपनी ओर आकर्षित कर सकता है।

जिसके मनमें निरन्तर दरिद्रताके विचार चलते रहते हैं, वह पूर्ण दरिद्रीही रहता है और उसे प्रायः ऐसेही अवसर प्राप्त होते रहते हैं। यदि उसके मनमें समृद्धिशाली विचारोंका प्रवाह बहता रहे, तो समृद्धिप्रद विश्वकी महती शक्ति उसके अनुकूल होगी और उसकी सहायतासे आज नहीं तो कल उसे ज़रूर समृद्धि प्राप्त होगी। आकर्षणका नियम सृष्टिके सार्वकालिक और सार्वत्रिक नियमोंमें से एक है। इस नियमसे सम्बन्ध रखनेवाला एक बड़ा और अपरिवर्तनीय सत्य यह है कि, प्रत्येक

वस्तु अपनी सजातीय वस्तुको अपनी ओर आकर्षित करती है। विश्वके सब पदार्थोंके कर्त्ता परमात्मासे जहाँ हमारा ऐक्य हो गया कि, सृष्टिके वस्तु-समुदायमेंसे आवश्यकताके अनुसार सर्व वस्तुएँ विपुलतासे प्राप्त करनेकी शक्ति हमें प्राप्त हो जावेगी। हम इस शक्तिकी प्राप्तिसे जो स्थिति जिस वक्त प्राप्त करना चाहेंगे, उसे उसी वक्त पानेकी शक्ति हमें प्राप्त हो जावेगी।

सब शास्त्रोंका उच्च सिद्धान्त एवं दिव्य सत्य परमात्माके समानही नित्य और अक्षय है; अतएव इनका अस्तित्व आज तक था और अब भी है; परन्तु जबतक हमें उनका ज्ञान न हो—हम उन्हें काममें न लावें तबतक उनका होना न होना बराबर है। ईश्वर सब वस्तुओंको अपने हाथमें रख लेता है। हमारी वाणीमें, हमारी बुद्धिमें—हमारे आचार-विचारमें, जितना देवत्व झलकेगा उतनाही ईश्वर हमें देता जायगा। वह लोगोंको उतनाही देता है, जितना कि लोग उसके पाससे लेनेके लिये अपने आपको योग्य बनाते हैं।

लक्ष्मी और सरस्वतीमें परस्पर वैर है, यह पुरानी कवि-कल्पना है। इसी तरह धर्मनिष्ठा और समृद्धिमें वैमनस्य होनेकी कल्पना भी बहुतसे लोगोंके सिरमें घुसी हुई है; परन्तु इस कल्पनामें कहने योग्य कुछ तत्त्व नहीं है। देह और आत्मामें परस्पर वैर समझकर आत्मोन्नतिके लिये उपवास करके, पञ्चाग्नि साधन करके, अथवा हठयोगकी प्रक्रिया करके, देहको दण्ड देनेका पागलपन जिनके मगज़में घुसा हुआ है,

उन्हींके खयाल-शरीफ़से ऐसी कल्पनाका जन्म हुआ है। मनुष्यके जीवन-सम्बन्धी उनकी कल्पना एकदम एकतरफ़ी, अपूर्ण एवं पागलपनसे भरी होनेसेही वे धर्मनिष्ठ मनुष्यका कङ्गाल होना ईश्वरीय योजना समझते हैं। जिसे सच्चा विज्ञान प्राप्त होगया है वही सच्चा धर्मनिष्ठ है और विज्ञानी मनुष्य अपनी सामर्थ्य और अपनी शक्ति निरन्तर सत्कार्यमें लगाते हैं; अतएव सृष्टि देवी नवनिधिका प्रवाह निरन्तर उनकी ओर प्रवाहित करती रहती हैं। उन्हें जितनी चाहिये उतनी सम्पदा विपुलतासे मिलती रहती है। जब हमारी सृष्टिके उच्चतम नियमोंमें पूर्ण श्रद्धा हो जायगी, तब दरिद्रताका भय हमपर अपना आधिपत्य जमाना छोड़ देगा।

हमारी नौकरी छूट गयी, दूसरी नौकरी हमें नहीं मिलेगी, ऐसा भय अगर हमारे मनमें स्थायीरूपसे जम गया; तो समझना चाहिये कि दूसरी नौकरी मिलनेकी संभावना कम है। वर्त्तमान कालमें हमारी स्थिति चाहे जैसी हो, परन्तु हममें ऐसी कुछ विलक्षण और सूक्ष्म शक्ति है कि जिसके द्वारा जो स्थिति आज हमें प्रतिकूल और हानिकारक मालूम होती है, उसपर विजय पाकर हम कल उसे अपने अनुकूल बना सकते हैं। उस शक्तिका हम उपयोग करने लगें, तो पहलेकी नौकरीसे भी हमें अच्छी नौकरी मिलेगी और ऐसा कहनेका अवसर हमें शीघ्र प्राप्त होगा कि हमारी नौकरी छूटी तो अच्छा हुआ, इसके लिये ईश्वरने हमपर बड़ा अनुग्रह किया।

विश्वके समस्त चराचरका उत्पन्न एवं नियमन करनेवाला परमात्मा जो सब जगत्का सञ्चालक है उसको पहचानो और साथही यह बात ध्यानमें रक्खो कि विचार एक प्रबल शक्ति है; उसका उपयोग बुद्धिमत्तासे किया जाय, तो उसकी सामर्थ्य बहुतही विलक्षण और कल्पनातीत हो जाती है। अतएव हमें योग्य नौकरी, योग्य समयमें, योग्य रीतिसे, ज़रूर मिलेगी ऐसा अचल विचार रक्खो। उसे कभी कमज़ोर मत होने दो। उसे निरन्तर दृढ़ आशासे सिञ्चित करते रहो। ऐसा करनेसे तुम उस दैवी पत्रमें विज्ञापन देते हो, जिसकी ग्राहक-संख्या असीम है और वह केवल पृथ्वीके इस छोरसे उस छोर-तकही प्रसिद्ध नहीं है, वरन् अखिल विश्वमें उसकी महान् प्रख्याति है। इस दैवी पत्रके विज्ञापनसे तुम्हें जितना लाभ होगा, उतना दूसरे समाचारपत्रोंके विज्ञापनोंसे होना दुःसाध्य ही नहीं, वरन् असंभव है। जितना तुम सृष्टिके उच्च नियमोंसे ऐक्यभाव करोगे, उतनाही अधिक उस दैवी पत्रके विज्ञापनका असर होगा।

जब तुम "आवश्यकता" के विज्ञापनको देखो, उस वक्त अपने हृदयकी ऊँचीसे ऊँची शक्तियोंपर विचार करो और फिर विज्ञापनको पढ़ो। ऐसा करनेसे तुम्हारा हृदय तुम्हें समझा देगा कि, अमुक काम तुम्हारे करने योग्य है कि नहीं। यदि तुम्हारा हृदय उसे करनेको कहे, तो तुरन्त उसे करनेको तैयार हो जाओ।

तुम्हें कोई नौकरी मिल गयी, परन्तु तुम्हारे योग्य नहीं मिली—तुम इससे अच्छी नौकरी पानेके योग्य हो, तो नौक-रीमें प्रवेश करनेके पहले तुम अपने मनमें इस विचारको स्थान दो कि, यह नौकरी हमें ऊपर चढ़ानेवाली एक सीढ़ी-मात्र है—इस विचारको दृढ़ करके अपनी वर्तमान नौकरीका कर्त्तव्य ईमानदारीसे करो, जिससे तुम्हें वे अवसर प्राप्त हों जो तुम्हें अच्छी नौकरीपर पहुँचानेमें सहायक होंगे। यदि तुम अपनी वर्तमान नौकरीका कार्य्य अच्छी तरहसे न करोगे, तो तुम्हें उन्नत दशाके बदले अवनत दशा प्राप्त होगी अर्थात् तुम्हें वर्त्तमान नौकरीसे ऊँची जगह न मिलेगी और तुम नीचे दरजेकी नौकरीपर धकेल दिये जाओगे। तुम अपनी वर्तमान नौकरी सच्चे दिलसे करो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारी उन्नति-सम्बन्धी महत्त्वाकांक्षा व्यर्थ होगी—तुम उन्नतिके उच्चतम शिखरपर चढ़नेके बदले अवनतिके गहरे कुएमें जा गिरोगे।

यही समृद्धिशाली होनेका नियम है। तुमपर कभी आकस्मिक विपत्ति आ पड़े, तो उससे काहिल मत हो; परन्तु मनकी प्रवृत्ति ऐसी रक्खो कि हमारे अच्छे दिन शीघ्रही आनेवाले हैं—हमें शीघ्रही उन्नतिप्रद सुदशा प्राप्त होगी। इससे आज जो बात विचार-सृष्टिमें आशाके रूपमें है, उसे दृश्य-सृष्टिमें मूर्त्तिरूप देकर अपनी आशाको सफल करनेका काम भीतरकी अति सूक्ष्म और अमोघ शक्ति झपाटेसे करेगी।

विचार-शक्ति बहुतही विलक्षण है। विचार-रूपी बीज अच्छी ज़मीनमें बोओ और उसमें अच्छा खाद डालो ; फिर तो उस बीजसे जो कल्पवृक्ष होगा, वह सब इच्छाओंका—सब कामनाओंका—पूर्ण करनेवाला होगा।

"मेरे नसीबही फूटे हुए हैं" इस प्रकार रोनेमें समयका दुरुपयोग करनेके बदले वही समय अपनी वर्त्तमान स्थितिको सुधारनेमें लगाया जाय, तो बहुत अच्छा। हम सुसम्पन्न और समृद्ध दशाको शीघ्रही प्राप्त होंगे, इस प्रकारके विचारही निरन्तर मनमें लाने चाहियें। हमारे पास सब बातोंकी समृद्धि शीघ्रही होगी, ऐसे निश्चयपूर्ण उद्गारोंका मनन करते रहना चाहिये। ये उद्गार शान्त एवं स्वस्थ-चित्तसे निकालने चाहियें और वे प्रबल और निश्चयात्मक होने चाहियें। समृद्धि पर हमारा विश्वास दृढ़ और अटल होना चाहिये। हम ज़रूर समृद्धिशाली होंगे, ऐसी हमारी दृढ़ आशा होनेसे इस विश्वासको उत्तेजना मिलेगी। इस प्रकारका जहाँ हमने अपना आचरण बनाया कि, फिर अपनी इष्ट समृद्धिको आकर्षण करनेवाले चुम्बक हम स्वयं बन जावेंगे। जिस वस्तुकी हमें अभिलाषा हो उसके उद्गार निकालनेमें किसी प्रकारकी शङ्का न करनी चाहिये ; क्योंकि अपनी अभिलाषाके उद्गार निकालनेसे अपनी विचार-सृष्टिकी बातको मूर्त्त एवं दृश्यरूप प्राप्त होता है और इस तरह अपनी आशा सफल करनेवाली सूक्ष्म और प्रबल शक्तिका उपयोग हमारी ओरसे होता है।

अमुक वस्तुकी हमें आवश्यकता है और उस वस्तुके प्राप्त होनेसे अपनी शारीरिक और मानसिक उन्नति करनेमें—दूसरोंको भी वैसीही उन्नति करानेमें—हम विशेष योग्य हों, ऐसी तुम्हारी हार्दिक अभिलाषा होगी ; तो वह वस्तु, यथासमय, योग्य रीतिसे, तुम्हें अवश्यमेव प्राप्त होगी ।

हम एक महिलाको जानते हैं, जिसे कुछ समय पूर्व कुछ रुपयोंकी अत्यन्त आवश्यकता थी । वह रुपये किसी अच्छे कार्यके लिये चाहती थी। उसे रुपये क्यों नहीं मिलेंगे, इसका उसे कोई यथेष्ट कारण नहीं मिला । उसे आन्तरिक शक्तिका कुछ ज्ञान हो गया था । हमारे उपर्युक्त कथनके अनुसार उसने अपने मनको बनाया । प्रातःकाल कुछ समय तक वह शान्त-चित्त होकर बैठी । इस प्रकार उसने विश्वकी महान् शक्तिसे अपना ऐक्यभाव कर लिया। दिन अस्त भी न होने पाया था कि, एक सद्गृहस्थने उस महिलाको बुलाया और कुछ काम करनेके वास्ते कहा । वह काम बड़ेही महत्त्वका था, अतएव उसे बड़ाही आश्चर्य हुआ कि ऐसे महत्त्वका काम मुझे क्यों सौंपा जाता है ; परन्तु उसने मनही मन सोचा कि जब मुझे इन्होंने बुलाया है, तो मैं काममें लग जाऊँ। देखूँ ; इसका फल क्या होता है । वह महिला उस काममें लग गयी और उसे पूरा कर लिया; तब उसे जितने रुपये मिलनेकी आशा थी, उससे बहुत अधिक रुपये मिले । उसे मालूम होने लगा कि, मुझे आशातीत रुपये मिल रहे हैं। वह उस सद्गृहस्थसे

कहने लगी कि तुम मुझे इतने अधिक रुपये क्यों देते हो? मैंने इतने रुपयोंके लायक़ मिहनत नहीं की। तब वह सद्गृहस्थ बोला कि तुम्हारी की हुई मिहनत मेरे रुपयोंसे अधिक है। इस महिलाको जो रुपये मिले, वह उसके इच्छित कार्यके लिये बहुत थे।

मनकी उच्चतम शक्तिसे चाहे जो काम करनेके सैकड़ों उदाहरण उपलब्ध होते हैं, उनमेंसे उपर्युक्त उदाहरण भी एक है। इससे एक बड़ी बात यह भी मालूम होती है कि, केवल भाग्यका भरोसा करके बैठा रहना—किसी प्रकारका उद्योग न करना—नितान्त अनुचित है। हमें चाहिये कि ऐसा न करके ईश्वरीय महान् शक्तिको काममें लावें। जिस कामको करनेका अवसर हमें प्राप्त हो, उसमें उसी वक्त हाथ लगा दें और उसे सच्चे दिलसे करें। यदि हम इससे अधिक महत्त्वका काम चाहते हैं, तो मनकी ऐसी दृढ़ प्रवृत्ति कर लेनी चाहिये कि, यही काम ऊँचे दरजेका काम प्राप्त करानेमें साधन हो। जगत्‌की सर्वोत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करनी हो, तो प्रथम अपने मनको उस स्थितिके विचारोंसे वेष्टित कर लेना चाहिये। हमारी इच्छित अत्युत्तम स्थिति हमें प्राप्त होगयी है—उसीमें हम रहते हैं, ऐसा मनमें लाना चाहिये; लोग जिसे मनोराज्य कहते हैं—वैसा मनोराज्य अपनी इष्ट स्थितिके सम्बन्धमें करना चाहिये। उस मनोराज्यके द्वारा ही इष्ट बात सफल करनेवाली महान् शक्तिको उत्तेजन मिलेगा। हमारा मन विशाल हवेली

में रहनेका निश्चय करेगा, तो हमारी झोंपड़ी धीरे-धीरे विशाल हवेली बन जावेगी। परन्तु इस प्रकार विशाल हवेलीके सम्बन्ध में मनोराज्य करते हुए वर्त्तमान झोंपड़ीसे घृणा न करनी चाहिये। सच्ची महत्त्वाकांक्षा अपनी वर्त्तमान स्थितिको ऊँची करनेके लिये शान्त-चित्तसे एवं दृढ़ निश्चयसे किया हुआ विचार और आचारही है। हम अभी पीतलकी थालीमें भोजन करते हैं, परन्तु अब हम चाहें कि चाँदीकी थालीमें भोजन करें; तो वर्त्तमान समय में चाँदी की थाली में भोजन करनेवालोंसे हम द्वेष एवं मत्सर न करें; क्योंकि ये दुष्ट मनो-विकार महत्त्वाकांक्षाको सफल करनेवाली महान् शक्तिके हाथ पाँव तोड़कर उसे पङ्गु बना देते हैं।

अपनी आन्तरिक शक्तिसे अपने आयुक्रमका नियम करने-वाले एक सिद्धके वचन हम यहाँ पर देते हैं—"तुम किसी घनघोर जङ्गलमें जा रहे हो, उस समय कोई भयङ्कर रीछ तुमपर आक्रमण करनेके लिये प्रस्तुत हुआ। उस वक्त यदि तुम भयसे भयभीत होगये, तो खूब समझ लो कि उसके पञ्जों से तुम्हारी रक्षा होना असम्भव है; परन्तु तुम उस रीछकी ओर निर्भय चित्तसे एकटक लगाकर देखोगे, तो वह तुम्हें किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचावेगा" इसमें सीखने योग्य बात यह है कि, विपत्तिके समय जो धैर्य छोड़ देता है उसके पीछे विपत्ति हाथ धोकर पड़ जाती है और उसे मटियामेट कर देती है। परन्तु जिसका ऐसा निश्चय है कि अपनी स्थिति

पर मेरा पूर्ण आधिपत्य है, वह अपनी विपत्ति पर जय पाता है और उसे सम्पत्तिमें परिवर्त्तित कर देता है। वह अपनी महान् शक्तिरूपी अजेय सेनाको समरभूमिमें लाकर विपत्तिरूपी शत्रुका पूर्ण पराजय करता है।

अपनी सामर्थ्यपर अचल और दृढ़ श्रद्धा होनाही यश-प्राप्ति का रामबाण उपाय है; प्रत्येक मनुष्यका यश अथवा अपयश उसकी परिस्थिति पर अवलम्बित नहीं है। वह सर्वथा अपने ही हाथमें है। यह बात जहाँ हमें भली भाँति ज्ञात होगयी कि, अपनी परिस्थितिको अपनी इच्छानुकूल सुस्थितिमें परिवर्त्तित करनेकी शक्ति हमें प्राप्त हो जावेगी; जब हमें इस गुप्त महान् शक्तिका ज्ञान हो जावेगा और उसको हम अपने आचरणमें लावेंगे, तब हमारी जाग्रत आन्तरिक शक्तियोंको उत्तेजन मिलेगा, जिससे सारे विश्वको नियमन करनेवाले गुरुत्वाकर्षण के समान उनकी भी गति हो जावेगी अर्थात् ये शक्तियाँ बाह्य जगत्में फैलकर हमारे वाञ्छित पदार्थोंको हमारी ओर आकर्षित करनेमें सहायक होंगी।

किसीने अभी जितनी ज्ञात हुई है उतनी पृथ्वीका सारा भाग यदि जय कर लिया, परन्तु उसने अपने आपको नहीं जीता; मैं कौन हूँ; मेरी आत्मा क्या है; इन बातोंका विचार उसने ज़रा भी नहीं किया और उस मनुष्यको जगत्की समग्र अशाश्वत जड़ सम्पत्ति प्राप्त होगयी; तोभी उससे उसे किसी प्रकारका सच्चा शाश्वत लाभ नहीं होगा। आजकल सौ में

निन्यानवे ऐसेही मनुष्य दृष्टिगत होते हैं। वे बेचारे इस अशाश्वत भौतिक सम्पत्तिके नादमें मग्न होकर उसके दास बने रहते हैं। यद्यपि वे अपने आपको उसका स्वामी समझते हैं; परन्तु वास्तवमें वे उसके पूरे तावेदार हैं। भौतिक सम्पत्तिके इन गुलामोंके हाथोंसे जब अपनेही इष्ट मित्रोंका—अपनेही हितैषियोंका—भला नहीं होता तब "वसुधैव कुटुम्बम्" का प्रतिबिम्ब तो उनको स्वप्नमें भी दृष्टिगत होना दुष्कार है अर्थात् उनसे समग्र संसारकी उन्नतिका—कल्याणका—कार्य्य कभी नहीं होनेका। सम्पत्तिसे गहरा सम्बन्ध रखनेवाले अर्थात् संसारमें जो कुछ है वह सम्पत्तिही है ऐसा माननेवाले, जब मृत्यु-मुख में पड़ते हैं, तब उनकी दशा बड़ीही शोचनीय होती है;क्योंकि उनकी आत्मा अपने साथ फूटी कौड़ी भी नहीं ले जा सकती। भौतिक सम्पत्तिके इन गुलामोंके पास आत्मिक सम्पतिका लेशमात्र नहीं रहता। "वसुधैव कुटुम्बकम्"के अद्वितीय गुणके अभावके कारण उनसे कोई भी भूतदयाका पुण्यशाली कार्य्य बन नहीं पड़ता। उनकी आत्मा उत्क्रान्त एवं प्रगल्भ नहीं रहती। उनकी मनोवृत्ति अनुदार एवं संकुचित रहती है। मतलब यह कि अनेक प्रकारकी बहुमूल्य आत्मिक सम्पत्तिसे ये बेचारे वञ्चित रहते हैं। ये लोग अपनी सारी आयु जड़ द्रव्य के उपार्ज्जनमें व्यय करते हैं। इस देहमें जो उपाधियाँ हमने लगा ली हैं, वे देह-पतनके साथही साथ नष्ट हो जावेंगी और हमारे अन्त:करणमें एकदम प्रकाश चमकने लगेगा—यह

कल्पना बिल्कुल निर्मूल है। कार्य्य कारण भावका नियम सार्वत्रिक और सार्वकालिक है। "जैसी करनी वैसी भरनी" का नियम जैसा ऐहिक आयुःक्रमके लिये है, वैसाही पारलौकिक आयुःक्रमके लिये भी है। कहनेका सारांश यह है कि, जड़ द्रव्य संचयकी अत्यन्त अभिलाषा जैसी इस लोकमें हानिकर है वैसीही परलोकमें भी।

जहाँ अशाश्वत भौतिक सम्पत्ति संचय करनेकी आदत इस देहमें लग गयी कि, फिर वह देह छूटनेके बाद भी नहीं छूटती। इसके सिवा उस समय ऐसी आदतवाले आदमीको अपनी अभिलाषाएँ पूरी करनेके साधन भी नहीं प्राप्त होते। वह इस आदतका गुलाम होनेसे कमसे कम कुछ समयके लिये तो अपने चित्तको दूसरी वस्तुओंमें भी नहीं लगा सकेगा और अपनी इच्छाओंके पूर्ण करनेकी सामग्री न मिलनेसे वह और भी कष्ट पावेगा। उसका कष्ट यह देखकर और भी बढ़ जा सकता है कि, जिन इकट्ठी की हुई वस्तुओंको—धन दौलत को—वह अपनी समझता था, अब उसको फजूलखर्च लोग इधर-उधर फेंक रहे हैं और नष्ट कर रहे हैं। वह अपनी जायदाद वसीयतनामेसे दूसरेके नाम कर जा सकता है, पर उसके काम में लानेके विषयमें कुछ नहीं कर सकता।

इसलिये अगर हम यह सोचें कि कोई जड़ पदार्थ हमारा है, तो यह हमारी बड़ी भारी मूर्खता है। जैसे परमात्माकी जमीनमेंसे कुछ बीघे जमीनको घेर-घारकर कोई कहे कि

यह मेरी मिलकियत है, तो यह उसकी भीख़ी है। जो चीज़ हम अपने पास नहीं रख सकते, वह हमारी नहीं है। चीज़ें हमारे हाथमें इसलिये नहीं आतीं कि हम उन्हें—जैसा कि हम चाहते हैं—अपनी मिलकियत बना लें और इसलिये भी बिल्कुल नहीं आतीं कि हम उन्हें जमा करलें। उन चीज़ोंके हमारे हाथमें आनेका यह अभिप्राय है कि, हम उनको काम में लावें और बुद्धिमानीसे काममें लावें। हम सिर्फ कारिन्दे हैं और इस हैसियतसे हमको इस बातका हिसाब देना पड़ेगा कि, जो कुछ हमें सौंपा गया था वह किस तरह ख़र्च किया गया। हरजानेका बड़ा क़ानून, जो तमाम दुनियामें जारी है, अपना काम बहुत ठीक-ठीक कर रहा है; यह सम्भव है कि हम उसकी कार्रवाईको हमेशा पूरी तरह न समझें या जब उसकी कार्रवाई हमारे साथ होती है, तब भी हम उसको न पहचानें।

जिस मनुष्यने उच्च जीवनका अनुभव कर लिया है, उसको अपार धन जमा करनेकी इच्छा नहीं होती और न वह कोई चीज़ अधिकतासे प्राप्त करना चाहता है। जब वह इस बात को जान लेता है कि, मेरे अन्दर धन भरा हुआ है तब उसको दृष्टिमें बाहरी धनका कुछ मोल नहीं रह जाता। जब वह इस बातको अच्छी तरह समझ जाता है कि, मेरे अन्दर एक ऐसा झरना मौजूद है कि, मैं वहाँसे अपनी ज़रूरतकी सब चीज़ें काफ़ी तौर पर चाहे जब मँगा लेने और अपने हाथमें

रखनेकी शक्ति रखता हूँ, तब फिर वह जड़ पदार्थों को—धन-दौलतको जमा नहीं करता ; क्योंकि वे चीज़ें उसको जानके लिये बवाल हैं, उनको उसे हर समय रखवाली और फ़िक्र रखनी पड़ती है और इस प्रकार उसका समय और उसका ख़याल जीवनकी असली वस्तुओंसे हटकर उन फजूल चीज़ोंमें लग जाता है या यों कहो कि वह मनुष्य सबसे पहले आन्तरिक राज्यको ढूँढ़ता है और जब उसे वह भीतरी राज्य मिल जाता है, तब बाक़ी चीज़ें आपसे आप बहुतायतसे उसे प्राप्त हो जाती हैं।

एक उस्ताद—जिसके पास प्रत्यक्षमें कुछ नहीं था, पर वास्तवमें सब कुछ था—कहता है कि, धनी मनुष्यका स्वर्गमें जाना उतनाही कठिन है, जितना ऊँटके लिये सुईके छेदमें से जाना कठिन है। इससे यह मतलब है कि, अगर कोई अपना सारा समय ज़रूरतसे ज़ियादा—अपार धन और बाहरी जड़ पदार्थोंको जमा करनेमें लगा दे ; तो उसे उस अलौकिक राज्यके प्राप्त करनेका समय कहाँ मिल सकता है, जिसके मिलनेसे और सब कुछ उसके साथही आ जाता है ? तुम्हीं बताओ कि इन दोनों चीज़ोंमेंसे कौनसी चीज़ अच्छी है ? एक तो लाखों करोड़ों रुपये जमा कर लेना और इन सबकी फिक्र रखना ; क्योंकि रुपयेके साथ उसकी रक्षा की फिक्र ज़रूरी है और दूसरे ऐसे नियमों और शक्तियोंको मालूम करना कि हर तरहकी ज़रूरत ठीक समय पर पूरी हो जावे और यह

जानना कि हम किसी अच्छी चीज़से वञ्चित नहीं किये जावेंगे तथा इस बातका ज्ञान होना कि, हममें ऐसी शक्ति है कि हम अपनी ज़रूरतकी चीज़ें काफी तौर पर हासिल कर सकते हैं। बताओ इन दोनोंमें कौन उत्तम है।

जो मनुष्य इस उच्चतर ज्ञानके राज्यमें पहुँच जाता है, उसको फिर यह परवा नहीं होती कि मैं भी उसी पागलपन की दशामें हो जाऊँ, जिसमें आजकल संसारके बहुतसे लोग पड़े हुए हैं। वह इस बातसे वैसीही घृणा करता है, जैसे कोई आदमी शरीरके किसी घिनौने रोगसे घृणा करता है। जब हम उच्चतर शक्तियोंको समझने लगेंगे, तब असली जीवन की ओर अधिक ध्यान देंगे और धन वगैरः का बटोरना हेच समझेंगे, जो हमारी असली उन्नतिमें सहाय होनेके बदले हानिकारक होते हैं। यहाँ भी जीवनकी और सब दशाओंकी तरह औसत या मध्यम दर्जेका रखना बेहतर है।

धनकी भी एक सीमा होती है। जब धन अन्दाज़से अधिक होगा, तो हम उसको ठीक-ठीक काममें नहीं ला सकेंगे। और जब वह धन काममें नहीं आवेगा, तब वह सहायता देनेके बदले एक तरहका बाधक हो जावेगा और आशीर्वादके बदले शाप मिलनेका कारण होगा। हमारे आसपासके तमाम लोग ऐसे हैं जिनकी ज़िन्दगी अब ढीली और छोटी हो गयी है; क्योंकि उन्होंने अपनी ज़िन्दगीका बहुतसा भाग रुपया जमा करनेमेंही लगा दिया है। वे अगर अब भी बाक़ी ज़िन्दगीको

बुद्धिमानोंके साथ बिताना चाहें, तो उनकी ज़िन्दगी सदाके लिये उत्तम और आनन्दप्रद बन सकती है।

जो मनुष्य अपनी ज़िन्दगी-भर धन आदि जमा करता रहता है और मरते समय सब कुछ परोपकारके लिये छोड़ जाता है, उस मनुष्यकी ज़िन्दगी भी उच्च जीवनसे बहुत गिरी हुई होती है। उसका यह उज्र ध्यान देने योग्य नहीं कि, मैंने तो सब कुछ इसलिये जमा किया था कि, मरते वक्त इसे अच्छे कामोंमें लगानेके लिये दे जाऊँ। मुझमें यह कोई ख़ास खूबी नहीं है कि, मैं घिसे हुए पुराने जूते जो अब मेरे कामके नहीं हैं दूसरे मनुष्यको देता हूँ, जिसे जूतोंकी ज़रूरत है। खूबीकी बात तो यह है या तब हो कि, एक नया बढ़िया जोड़ा जूतोंका उस मनुष्यको दिया जावे, जिसके पास गरमीके मौस-समें जूते नहीं हैं और जो अपने परिवारका पालन करनेके लिये ईमानदारीसे परिश्रम करके पैसे कमाता है। और अगर जोड़ेके साथही मैं उसे अपने प्रेमका हिस्सा भी दूँ, तो उसे दूना उपहार मिल जाता है और मेरी दूनी बरकत होती है।

जिन लोगोंने बहुत कुछ जमा कर लिया है, उनके लिये उस धनका इस तरह खर्च करना बेहतर होगा कि, उसे वे अपने शेष जीवनको और चालचलनको रोज़-रोज़ उत्तम बनानेमें लगावें। इस तरहसे उनकी ज़िन्दगी दिन-दिन सुधरती जावेगी और उन्नति करेगी। एक समय ऐसा

आवेगा, जब मनुष्यके लिये यह बात बहुत बुरी समझी जावेगी कि वह मर गया और बहुत कुछ जमा किया हुआ धन छोड़ गया।

बहुतसे मनुष्य आज-कल महलोंमें निवास करते हैं, जो ज़िन्दगीकी असली खूबीके लिहाज़से वास्तवमें उन मनुष्योंसेभी ग़रीब हैं, जिनके घर पर फूस भी नहीं है। सम्भव है,कि किसी मनुष्यके पास महल हो और वह उसमें रहे, पर वह महल भी उसके लिये एक अनाथालयही हो सकता है।

देखो, परमात्माका कैसा उत्तम प्रबन्ध है, कि जो चीज़ जमाकी हुई है और इस कारण किसी काममें नहीं आ सकती,उसके तित्तर-बित्तर करने—चौपट करनेके लिये परमात्माने दीमक और कीड़े पैदा कर दिये हैं; ताकि उसके काममें आनेकी नयी सूरत निकल आवे। एक और बड़ा नियम बराबर काम करता रहता है, जिसका फल यह है कि जो मनुष्य केवल जमा करता रहता है उसकी सब बड़ी शक्तियाँ और असली आनन्द प्राप्त करनेका बल ढीला और नष्ट होजाता है।

बहुतसे लोग उमदा और अच्छी चीज़ोंसे सदा दूर रहते हैं; क्योंकि वह सदा पुरानी चीज़ोंसे प्रीति रखते हैं। अगर वे पुरानी चीज़ें दूसरोंको दे डालें, तो आगे नयी चीज़ोंके लिये गुञ्जाइश हो सकती है। जमा करनेसे हमेशा किसी न किसी तरहकी हानि पहुँचती रहती है; खर्च करनेसे और बुद्धिमानीके साथ खर्च करनेसे सदा नया लाभ होता है।

अगर वृक्ष अज्ञानता और लोभके कारण इस वर्षके पत्तोंको काम दे चुकनेके बाद भी अपने ऊपर रहने दे, तो फिर उसे वसन्तमें पूर्ण और सुन्दर नवजीवन कैसे प्राप्त हो सकता है? अवनति धीरे-धीरे होती है और अन्तमें मृत्यु आती है। हाँ, अगर वृक्षको अभी मृत्यु आ जावे, तब फिर शायद उसके लिये यह बेहतर हो कि वह अपने पुराने पत्तों और चीज़ोंसे चिपटा रहे और उन्हें न छोड़े; क्योंकि अब और नये पत्ते उसमें नहीं लगेंगे। परन्तु जब तक कि वृक्षमें जीवन अपना काम कर रहा है तब तक यह आवश्यक है कि, वह पुराने पत्तोंको छोड़ दे, ताकि उनकी जगह नये पत्ते आ सकें।

तालेवरी इस विश्वका नियम है। यानी हर प्रकारकी आवश्यकताके लिये आपसे आप काफी सामान मिल जाता है। हमारे लिये प्राकृतिक और असली जीवन है। हमेशा अनन्त जीवन और शक्तिके साथ अपना ऐक्यभाव समझदार जीवन व्यतीत करते हुए ऐसी पूर्ण ज़िन्दगी और शक्ति प्राप्त करनाही हमारे लिये प्राकृतिक और असली जीवन है कि, जिससे हम समझें कि जिन सब चीज़ोंकी हमें आवश्यकता है, उनका भरा हुआ भण्डार हमारे पास मौजूद है।

अतएव जमा करनेसे नहीं, बल्कि जो चीज़ें हमारे पास आवें उनको बुद्धिमानीसे काममें लाने और खर्च करनेसेही हमेशा एक नया भण्डार हमारे पास मौजूद रहेगा और यह

नया भण्डार पुराने भण्डारको अपेक्षा हमारी वर्त्तमान आवश्यकताओंके लिये अधिकतर लाभदायक और उपयोगी होगा। इस रीतिसे हमें स्वयं अनन्त परमात्माके उत्तमसे उत्तम भण्डारही नहीं मिल जायँगे; बल्कि हमारे द्वारा ये भण्डार दूसरोंको भी मिल सकेंगे।
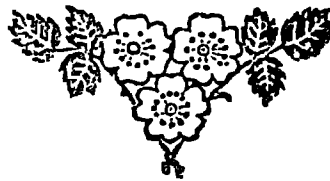
आठवाँ अध्याय।
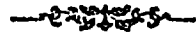
महात्मा, सन्त और दूरदर्शी बननेके नियम।

हमने यहाँ तक जिस महान् सत्यका आपके सामने वर्णन करनेका प्रयत्न किया है, वह मनुष्यके अनुभव एवं अन्तर्दृष्टिके आधार पर है। हमने किसी वस्तुका ऐसा वर्णन नहीं किया, जो दूसरोंकी शिक्षाके आधार पर हो। यह शिक्षा उन मनुष्योंकी है, जिनको ईश्वरीय प्रेरणा हुई है। आइये, अब हम उन्हीं महान् सचाइयोंको उन विचारों और उपदेशोंके प्रकाशमें देखें, जो संसारके बड़े-बड़े बुद्धिमान महात्माओंने प्रकट किये हैं।

विचारोंके लिये जो कुछ लिखा गया है, उसका साराँश यह है कि, मानवी जीवनका सर्वोत्कृष्ट तत्त्व अनन्त जीवनके साथ विवेकपूर्वक एकताका पूर्ण अनुभव करना है और ईश्वरीय प्रवाहकी ओर अपना अन्तःकरण खोलना है। महात्मा ईसाने कहा है,—"मैं और परमपिता परमात्मा एकही हैं"। उनके इस बचनसे हम यह बात भले प्रकार मालूम कर सकते हैं कि, उन्होंने परमपिता परमात्माके साथ

किस प्रकार अपनी एकता करली थी। फिर वह कहते हैं—"जो बातें मैं तुमसे कह रहा हूँ, उनका कहनेवाला मैं नहीं, मेरा अन्तर्यामी परमात्मा है।" फिर वह कहते हैं,—"मैं कुछ नहीं कर सकता, जो कुछ करता है वह परमात्माही करता है अर्थात् वह शक्ति-प्रवाह भेजता है—मैं उसे भोलता हूँ और उसीके मेलसे काम करता हूँ।" आगे बढ़कर पुन: वह कहते हैं,—'तुम ईश्वरीय राज्यको और उसको सचाइयोंको ढूँढ़ो, जिससे सब वस्तुएँ आपसे आप तुम्हें प्राप्त होजावें। स्वर्ग यहाँ-वहाँ कहीं भी नहीं है, वह अपने भीतरही है। स्वर्गीय राज्य और ईश्वरीय राज्य एकही है और समान है। स्वर्गीय राज्य अपने भीतरही है।" इससे क्या हमें यह मालूम नहीं होता कि, उसको आत्मा परमात्माके साथ विवेकपूर्वक एकता करनेके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है? जब तुम्हें इस ईश्वरीय एकताका ज्ञान हो जावेगा, तब तुम्हें ईश्वरीय राज्यका पता लग जावेगा, जिससे सब पदार्थ तुम्हें स्वयमेव प्राप्त हो जावेंगे। बाइबलमें एक फ़ज़ूलखर्च करनेवाले लड़केका ज्वलन्त दृष्टान्त आया है। वह यह है कि जब उस अपव्ययी लड़केने विषयभोगमें अपने पासकी सब सम्पत्ति व्यय करदी—जब वह सब विषयभोगोंको भोग चुका; तोभी उसके मनको सन्तोष नहीं हुआ और उसे मालूम होने लगा कि मैं केवल 'पशु हूँ।' जब उसे कुछ ज्ञान हुआ, तब वह मनही मन कहने लगा कि

अब मैं इधर-उधर मारा-मारा न फिरकर परमपिताकी शरण जाऊँ। उससे उसकी अन्तरात्मा कहने लगी कि तू पशु नहीं है। तू उस परमपिता प्रभुका पुत्र है, जो स्वर्गमें विराजमान् है। अब उसे मालूम होने लगा कि, मुझे अपना सच्चा जीवन परमात्मासे प्राप्त हुआ है। माता-पिता केवल शरीरको बनानेवाले निमित्तमात्र हैं; परन्तु सच्चा जीवन तो अनन्त जीवन परमात्मासेही सबको प्राप्त हुआ है।

एक समय महात्मा ईसाको किसीने यह खबर दी कि, आपसे मिलनेके लिये आपके भाई बाहर खड़े हुए हैं, वे आप से कुछ कहना चाहते हैं। इसपर महात्मा ईसाने उत्तर दिया कि कौन मेरी माता है? कौन मेरा पिता है? कौन मेरे भाई-बहन हैं? जो स्वर्गस्थ परमपिता परमात्माकी इच्छाके अनुकूल चलता है वही मेरा पिता है, वही मेरी माता है और वही मेरा भाई या बहन है।

बहुतसे लोग रिश्तेदारीके बन्धनमें बहुत जकड़े हुए रहते हैं, परन्तु यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि केवल रक्तके सम्बन्धसेही कोई सच्चा रिश्तेदार नहीं बन सकता। हमारे सबसे निकटस्थ सम्बन्धी वेही हैं, जिनसे हमारा आत्मिक सम्बन्ध है—जिनकी आत्मासे हमारी आत्मामें किसी प्रकारका भेद नहीं है, फिर चाहे वे पृथ्वीके उसपार क्यों न रहते हों, चाहे हम परस्पर कभी न मिले हों; परन्तु आकर्षणके नियमानुसार हमारे मन एक दूसरेको आकर्षित करते

रहते हैं। इसमें किसी प्रकारकी भूल नहीं होती। इस जीवनमें अथवा दूसरे जीवनमें हम उनसे मिलेंगे।

हजरत ईसाकी आज्ञा है,—"पृथ्वीपर किसीको तुम अपना पिता मत समझो, क्योंकि पिता केवल एकही है जो स्वर्गमें विराजमान् है।" उसकी इस आज्ञासे हमें उसके पितृत्वकी उच्च कल्पनाका साफ-साफ ज्ञान होता है। यदि ईश्वर सबका पिता है,तो विश्वके हम सब प्राणियोंमें बन्धुभावका सम्बन्ध है; परन्तु इससे भी ऊँची कल्पना यह है कि मनुष्यकी और ईश्वरकी एकता है अर्थात् हम सब मानव-प्राणियोंकी एकता है। जब हमें इस तत्त्वका भली भाँति परिज्ञान हो जावेगा, तब हमें साफ-साफ मालूम होने लगेगा कि जितना हम इस अनन्त जीवनके साथ सम्बन्ध करेंगे—जितना हम उसकी ओर अपना अन्तःकरण खोलेंगे, उतनेही हम मानवप्राणियोंके ऊँचे उठानेमें—उनको ईश्वरकी ओर प्रवृत्ति करानेमें सहायक होंगे।

महात्मा ईसाने कहा है कि जब तक तुम निरे छोटे बच्चेके समान न हो जाओगे, तबतक स्वर्गीय राज्यमें प्रवेश न कर सकोगे। ईसाने और भी कहा है कि मानव-जीवनका आधार केवल रोटी नहीं है,वरन् उस जीवनके आधार वे वचन हैं जो ईश्वरके मुँहसे निकलते हैं। इस आज्ञासे भी उसने अनन्त जीवनके साथ एकता करनेकी बातको दर्शाया है, जिसको अभी हम पूर्णतया नहीं समझ सके हैं। यहाँ पर उसने यह

शिक्षा दीहै कि, भौतिक जीवन केवल अन्नसेही स्थित नहीं रह सकता। जो मनुष्य अपना सम्बन्ध जितनाही इस अनन्त जीवनके साथ करेगा, उतनाही उसका भौतिक जीवन सुधरेगा। वे लोग धन्य हैं जिनका अन्तःकरण शुद्ध है; क्योंकि वे उसमें ईश्वरके दर्शन करते हैं अथवा दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि,वे लोग धन्य हैं जिन्हें इस विश्वमें ईश्वरका ज्ञान हो गया है और इससे वे ईश्वरके दर्शन कर सकते हैं।

मनु भगवान् कहते हैं—"जो मनुष्य अपनी आत्मामें सब जीवोंकी उच्चतम आत्माओंको पहचान लेता है और सब लोगोंको एकही दृष्टिसे देखता है, वह मनुष्य सर्वोत्कृष्ट आनन्दको प्राप्त कर सकता है।" एथेन्सने यह कहा था कि हम चर्मविशिष्ट शरीरमें रहकर ईश्वर हो सकते हैं। गौतम जो पीछे बुद्ध नामसे प्रसिद्ध हुए, उनके जीवनमें भी यह वृहत् सत्य वर्त्तमान है, जिसका कि हम विचार कर रहे हैं। उनका कहना है कि लोग इसलिये बन्धनमें पड़े हुए हैं कि,अभी तक उन्होंने अहं भावको नहीं छोड़ा। भिन्नताके विचारको दूर करके, यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य और सर्वशक्तिमान् ईश्वर एकही हैं। यही महात्मा बुद्धके उपदेशका सार है। ईश्वरसे एकता करनाही सब महात्माओंका मन्तव्य था।

संसारके इतिहाससे हमें पता लगता है कि जिन लोगोंने सच्चे विज्ञानके राज्यमें प्रवेश किया था, जिन लोगोंने अलौकिक शक्ति प्राप्त की थी, जिन लोगोंने सच्ची शान्ति और अपूर्व

आनन्द प्राप्त किया था, उन्हें ब्राह्मी स्थिति प्राप्त थी अर्थात् उनके और परमात्माके एकता थी। साधु डेविड बड़े दृढ़ और शक्तिमान् थे। वह जितनीही ईश्वरीय ध्वनि सुनते थे, उतनीही उनको आत्मा ईश्वरकी स्तुतिमें लीन होती जाती थी और वह उसकी आज्ञानुसार काम करते थे। जब ऐसा कार-नेमें उनने किसी तरहकी भूल हो जाती थी,तब उनकी आत्मा दुःख और अशान्तिसे रोती थी। यही बात प्रत्येक राष्ट्र और लोगोंपर घट सकती है। जब तक इसराईलकी सन्तानें ईश्वरको मानती रहीं और उसकी आज्ञानुसार चलती रहीं, तब तक वे समृद्धिशाली, सन्तोषी और शक्तिमान् रहीं और कोई भी बात उनके विरुद्ध नहीं हो सकी। परन्तु जब वे ईश्वरको अपनी शक्तिका आदिकारण न समझकर, अपनी शक्तिपर ही निर्भय रहने लगीं, तब वे पराजित हुईं—बन्धनमें पड़ीं या निराश हो गयीं।

वे लोग धन्य हैं, जो ईश्वर की आज्ञाको सुनते हैं और उसीके अनुसार आचरण करते हैं; इसीसे उन्हें सब कुछ प्राप्त हो जाता है। हम उच्च प्रकाशमें अपने जीवनको जितनाही व्यतीत करेंगे, उतनेही अधिक हम बुद्धिमान होंगे; क्योंकि यह बात विश्वके अटल नियमके आधार पर है।

आज तक जगत्के इतिहासमें महर्षियोंने, धर्म-सञ्चालकोंने, जगत्उद्धारकोंने जो उच्च दशा प्राप्त की,—वह ईश्वरीय नियमके अनुसरण करनेका फल है। उन सबने इस बातको

पूर्णतया समझा था कि, हमारी और परमात्माकी एकता है। ईश्वरका सब पर समभाव है। वह महर्षियोंको—साधुओं-को उत्पन्न नहीं करता ; वह मनुष्योंकोही उत्पन्न करता है; परन्तु जो उसके असली स्वरूपको पहचान लेते हैं—जो उससे अपनी पूर्ण एकता कर देते हैं, वेही महर्षि एवं साधु बन जाते हैं। वह किसी विशेष राष्ट्रका अथवा जातिविशेषका पक्षपाती नहीं है; परन्तु जो राष्ट्र—जो जाति—ईश्वरको मानने लगती हैं, वह ईश्वरके प्रियवरोंकी तरह जीवन व्यतीत करने लगती हैं।

यह कोई बात नहीं है कि चमत्कार किसी ख़ास समयमें अथवा किसी ख़ास स्थानमें हों। जिन्हें हम चमत्कार कहते हैं, वे सब समयमें और सब स्थानोंमें हुआ करते हैं। वे पह-लेकी तरह अब भी हो सकते हैं, यदि उन्हीं नियमोंका अनु-सरण किया जावे, जिनका कि पहले किया जाता था। हम सुना करते हैं कि जिन लोगोंने ईश्वरीय पथका अनुसरण किया है, वे लोग बड़ेही शक्तिशाली और बलवान् हुए हैं। यहाँ भी कार्य्य और कारणका अनुक्रम है।

ईश्वर किसीको समृद्धिशाली नहीं बनाता; परन्तु वह मनुष्य समृद्धिशाली हो जाता है जो उसको मानता है एवं उसके उच्च नियमोंके अनुसार जीवन व्यतीत करता है। सालेमानको इस बातका मौक़ा दिया गया था कि, वह चाहे जो माँग ले। उसने अपने उच्च विचारोंके कारण विज्ञान माँगा। उसे मालूम होने लगा कि विज्ञानमेंही सबका समावेश है। हम सुना

करते हैं कि, ईश्वरने फराऊनके अन्तःकरणको कठोर कर दिया, परन्तु हम इसपर विश्वास नहीं करते ; क्योंकि ईश्वर किसीके अन्तःकरणको नहीं बनाता। फराऊनने खुद अपने हृदयको कठोर बना लिया और इसके लिये व्यर्थही ईश्वरको दोष दिया। जब फराऊनने अपने हृदयको कठोर बना लिया और उसने ईश्वरीय आज्ञाका भङ्ग किया, तब प्लेग आदि बीमारियोंका आविर्भाव हुआ। यहाँ भी कार्य्य और कारण का अनुक्रम समझना चाहिये। इसके विपरीत यदि वह ईश्वरीय आज्ञाको अपने हृदयमें धारण करता और उसके अनुसार आचरण करता, तो प्लेगादि बीमारियाँ नहीं आने पातीं।

हम सबसे अच्छे दोस्त बन सकते हैं और कट्टर शत्रु भी बन सकते हैं। हम सर्वोच्च और सर्वोत्कृष्ट हार्दिक ध्वनि पर जितनाही ध्यान देंगे, उतनेही हम सबके अच्छे मित्र बनेंगे और जितना हम इसके विपरीत आचरण करेंगे, उतनेही हम सबके शत्रु बनेंगे। जिस परिमाणसे हम उच्चतम शक्तियोंकी ओर अपना अन्तःकरण खोलेंगे और उन्हें अपने द्वारा प्रकट होने देंगे, उसी परिमाणसे हम आत्मिक—ईश्वरीय प्रेरणाओंके कारण मनुष्योंके उद्धारक बनेंगे। इस तरह हम एक दूसरेके उद्धारक हो सकते हैं।

नवाँ अध्याय ।

सब धर्मोंका असली तत्त्व—विश्वधर्म ।

जिस महान् सत्यका आज हम विचार कर रहे हैं, वह सब धर्मोंका मूलतत्त्व है। प्रत्येक धर्ममें हम इस तत्त्वको पाते हैं। इसके विषय में सबका एक मत है। सब भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयायी इसके विषयमें एकमत हो सकते हैं। लोग हमेशा तुच्छ बातोंके विषयमें अपने-अपने मतके लिये लड़ते-झगड़ते हैं एवं वाद-विवाद करते हैं; परन्तु इस सत्य तत्त्वके विषयमें ये सब लोग अपना एक मत प्रकट करते हैं। सब लोग इसे मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। यह सत्य तत्त्व सब धर्मोंमें एकसा वर्तमान है। हम लोगोंमें जो झगड़े होते हैं—जो वाद-विवाद होते हैं—वे आसुरी प्रकृतिके विषयमें होते हैं; परन्तु इस सत्य तत्त्वको सब मानते हैं।

किसी देशमें भिन्न-भिन्न मतके लोग हैं, जो परस्पर लड़ते-झगड़ते हैं; परन्तु जिस समय उस देशमें जल-प्रलय होता है या भयङ्कर अकाल पड़ता है अथवा मनुष्य-संहारिणी कोई

भयङ्कर बीमारी फैलती है ; तो सबके सब लोग अपने मतभेदों को छोड़कर—लड़ाई-झगड़ोंको एक तरफ रखकर, उस महासंकटको हटानेके लिये, एकमत होकर कैसा प्रयत्न करते हैं ? उस समय उनका मतभेद—उनका पारस्परिक विरोध कैसे चला जाता है ? इसका कारण यही है कि, उस महासंकटका सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेषसे न होकर सार्वजनिक होता है। बदलने वाला अशाश्वत तत्त्व लड़ाई-झगड़े उत्पन्न करता है ; परन्तु शाश्वत त्वात्त्विक प्रकृति सबके साथ मिलकर प्रेम और सेवाका उन्नतम काम करती है।

स्वदेश-प्रेम प्रशंसनीय है। हम अपने देशपर प्रेम करें, यह बहुत अच्छी बात है ; परन्तु इसके साथही यह बात भी जानना आवश्यक है कि, क्यों हम दूसरे देशोंसे अपने देशपर अधिक प्रेम करें ? यदि हम अपने देश पर प्रेम करते हैं और दूसरे देशोंसे द्वेष रखते हैं, तो हम अपने हृदयकी लघुता प्रकट करते हैं। और इससे हम सच्चे स्वदेश-प्रेमसे कोसों दूर रहते हैं। यदि हम जैसा अपने देशपर प्रेम करते हैं, वैसाही प्रेम अन्य-देशों पर करें, तो समझना चाहिये कि हम अपने अन्तःकरण की उदारता प्रकट करते हैं। इस प्रकार स्वदेश-प्रेम अत्युच्च और सर्वश्रेष्ठ है। परमात्मा अखिल विश्वके सब जीवोंका जीव है, वह सर्वाधारभूत एवं महानशक्तिवाला है, सब जीवोंको प्रेरणा करके उनसे क्रिया करानेवाला वही है। इस बातमें किसीका मतभेद नहीं हो सकता। इस बातको सब लोग और

सब धर्म मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। इस प्रकारके विचारको मनमें स्थान देनेसे कोई नास्तिक और अधर्मी नहीं बन सकता। ईश्वरके विषयमें ऐसे बहुतसे विचार हैं, जिनके कारण लोग नास्तिक और अधर्मी बन गये हैं और धन्यवाद है ईश्वरको कि ऐसे लोग मौजूद हैं। हममें जो लोग भक्त एवं धार्मिक जोशवाले हैं, वे भी ईश्वरके गुणोंके सम्बन्धमें ऐसा कहते हैं।

यह विचार जो अभी प्रकट किया गया है, उन लोगोंको भी सन्तुष्ट करेगा जो इस बातको नहीं जान सकते कि ईश्वर अपने बच्चों पर किस तरह क्रुद्ध एवं नाराज़ हो सकता है। जिन स्त्री-पुरुषोंमें ये गुण यानी क्रोध, द्वेष आदि पाये जाते हैं, उनके सम्बन्धमें हमारी पूज्यबुद्धि कम हो जाती है।

वास्तवमें देखा जावे तो साफ दिलके नास्तिकही सच्चे धर्मके सच्चे मित्र हैं। येही परमात्माके सच्चे भक्त हैं। ये ही मानवसमाजके सच्चे सेवक हैं। महात्मा ईसा भी नास्तिक-शिरोमणि कहलाते थे। वह परम्पराके रिवाजोंके—प्राचीन विश्वासोंके—गुलाम नहीं थे। वह विश्वके प्रतिरूप थे। महात्मा बुद्धने भी जब हिंसारूपी दुष्ट राक्षसोके विरुद्ध प्रबल शस्त्र उठाया, जब उन्होंने प्राचीन रिवाज पशु-यज्ञके विरुद्ध उपदेश देना शुरू किया; तब बहुतसे धर्म-बावलोंने उन्हें नास्तिक कहने में—पाखण्डी ठहरानेमें—कोई कसर नहीं उठा रक्खी थी; परन्तु सत्यज्ञान प्रकाश हुआ—ईश्वरीय ज्योति चमकने लगी; तो सब लोगोंकी उन पर पूज्यबुद्धि होने लगी—लोग उन्हें

महात्मा समझने लगे । देशका देश बल्कि यों कहिये कि सारा संसार उनका परमपवित्र उपदेश श्रवण करनेके लिये उत्कण्ठित हुआ । करोड़ों मनुष्य उनके अनुयायी बने । अहिंसाकी विजय-ध्वजा फहराने लगी और पशु-पक्षी तक निर्भय होकर सुखसे विचरने लगे । कहनेका तात्पर्य्य यह है कि, नास्तिक कहलानेवाले महात्मा बुद्धसे संसारका जैसा अकथनीय उपकार हुआ—उनके परमपवित्र उपदेशोंके द्वारा लोगोंके अन्त:करणमें जैसे पवित्र भावोंका उदय हुआ—वैसा अपनेको धर्म-धुरन्धर माननेवाले आस्तिकताका ढोंग करनेवाले मनुष्योंसे होना कठिन था ।

वही महान् शाश्वत सत्य—जिसे आर्य और अनार्य्य, आस्तिक और नास्तिक, ईसाई और मुसल्मान सब मानते हैं—इस विश्वका सच्चा रहस्य है । जब हम इस सर्वश्रेष्ठ तत्त्वको अपने जीवन-क्रममें ग्रथित कर देंगे, तो हमारे क्षुद्र मतभेद—हमारा पारस्परिक द्वेष और हमारे अनर्थ बहुत क्षुद्र होनेके कारण शीघ्रही नष्ट हो जावेंगे । फिर तो हिन्दू जैसे हिन्दू-मन्दिरोंको पवित्र मानते हैं, वैसेही मुसल्मानोंको मसजिदोंको और ईसाइयोंके गिरजोंको भी पवित्र मानने लगेंगे । किसी भी धर्म-मन्दिरमें जाकर ईश्वरोपासना करनेमें हमें शङ्का न होगी । हमारी दशा इतनी उच्च हो जावेगी कि, वनका कोई भी स्थान अथवा हमारा घरही हमारा उपासना-मन्दिर बन जावेगा; क्योंकि सच्ची उपासनाके लिये आत्मा और परमात्माकी

आवश्यकता है; अतएव चाहे जिस दशामें और चाहे जिस स्थलमें हम ईश्वरोपासना कर सकते हैं ।

उपर्युक्त विश्व-धर्मीय आदि तत्त्वको सब लोग मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं । यह दिव्य रहस्य सार्वत्रिक, सार्वकालिक और शाश्वत है । इसके विषयमें सबका एक मत है । जो बात किसी व्यक्ति विशेषको लाभकारी हो—जो किसी खास समय के ही उपयोगी हो—फिर अनावश्यक हो और जो समयके व्यतीत होनेसे नष्ट हो जाती हो, उसके विषयमें लोगोंका मत-भेद हो सकता है । जो विश्वधर्मके रहस्यसे अज्ञात हैं, उनकी दृष्टि बहुतही संकुचित रहती है । इससे वे अपने धर्मकोही ईश्वर-प्रणीत धर्म और अपने धर्म-संचालकोंको ही ईश्वरीय दूत मानते हैं । प्रत्येक धर्मके अनुयायी अपने-अपने धर्म-ग्रन्थोंको ईश्वर-प्रणीत और अपने-अपने धर्म-संचालकोंको ईश्वरीय पुरुष मानें तो कुछ हानि नहीं ; परन्तु इस जगत्में हमारे धर्मग्रन्थों के समान अन्य धर्मग्रन्थ भी हैं—हमारे धर्माचार्यों के समान अन्य धर्माचार्य्य भी हैं, यह बात इनके समझमें जगह नहीं पाती ; बस यही इनकी बड़ी भारी भूल है और यही इनके मन की संकीर्णता एवं अदूरदर्शिता है ।

अपौरुषेय और पवित्र सब धर्म-ग्रन्थ एकही परमात्मासे प्रकट हुए हैं । ईश्वर उन मनुष्योंकी पवित्र आत्माओंके द्वारा बोलता है, जिन्होंने इस मन्शासे अपने अन्तःकरणको निर्मल एवं पवित्र कर लिया है कि उसके द्वारा ईश्वरीय ध्वनि प्रगट

हो। इनमेंसे कितनेही लोग तो ऐसे हैं, जो अपने सात्विक गुणके पूर्णतया उन्नत होनेसे पूर्ण ब्राह्मी-स्थितिमें रम रहे हैं और कितनेही लोग अभी कुछ अपूर्ण दशामें हैं—उनका पूर्णतया विकाश होना अभी शेष है। अन्तःकरणको जिस परिमाणसे खोलेंगे, उसी परिमाणसे हममें ब्राह्मी स्थितिकी पूर्णता आवेगी।

हमें चाहिये कि हम उनलोगोंकी श्रेणीमें न रहें, जो अपने मनकी संकीर्णताके कारण ऐसा मानते हैं कि, ईश्वर किसी ख़ास समयमें—पृथ्वीके किसी विशेष भागमें, केवल इने-गिने मनुष्योंमें प्रकट होता है। यह बात ईश्वरीय नियमके विरुद्ध है। ईश्वर किसी व्यक्ति विशेषका मान-सन्मान नहीं करता ; परन्तु जो उसे पूर्ण भावसे भजता है और नेकचलन होता है वही उसका प्यारा है, यह धर्मशास्त्रका सिद्धान्त है।

जब हमें इस सत्यका भली भाँति ज्ञान हो जावेगा, उस वक्त हम इस बातकी ओर कम ध्यान देंगे कि अमुक मनुष्य किस धर्मका अनुयायी है ; बल्कि हमारा लक्ष्य इस बातकी ओर विशेष झुकेगा कि, वह मनुष्य अपने धर्मका कहाँ तक पाबन्द है। स्वधर्मके विषयमें लोगोंका दुरभिमान जितनाही कम होगा और सत्यकी ओर उनकी प्रवृत्ति जितनीही अधिक झुकेगी, उतनाही वे दूसरोंको धर्मभ्रष्ट करनेसे बचेंगे। इसके सिवा, आज जो लोग दूसरोंको उनके धर्मसे च्युत करके, अपना अनुयायी बनानेके लिये, अपने समयका और अपने द्रव्यका

दुरुपयोग करते हैं, वे वैसा न करेंगे; वरन् उन्हें अपने धर्मके महान् सत्य तत्त्वोंको समझाकर, अनुकूल धर्म स्वीकार करनेके लिये एवं आत्मोन्नति करनेके लिये उत्तेजित करेंगे। सात्विक गुणोंकी वृद्धि करके, अन्तःकरणको पवित्र करके, आत्मोन्नति करनाही प्रत्येक धर्मका प्रधान उद्देश्य है। परन्तु सभी धर्म एकही कालके एवं एकही जगहके लिये नहीं बने है; वरञ्च देश, काल और पात्रके अनुसार बने हैं। यही कारण है कि स्थूल बातोंमें इनमें कुछ भेद देख पड़ता है; परन्तु ये सब बातें अशाश्वत और असहत्त्वकी होनेसे विश्व-धर्मीय मनुष्य इनकी ओर विशेष लक्ष्य नहीं देता। उसका सारा लक्ष्य—सारा ध्येय शाश्वत एवं सर्वोत्कृष्ट धर्म-तत्त्वकी ओर लगा हुआ रहता है। यही महान् सत्यतत्त्व उसे प्रत्येक धर्ममें देख पड़ता है। इस सत्य तत्त्वके विषय में सब धर्मोंका एक मत है—सभी धर्म इसे मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। भिन्न-भिन्न धर्मोंमें जो फ़र्क़—विचित्राएं देख पड़ती हैं वे इसके विषयमें न होकर आचार-संस्कारादि गौण बातोंमें होती हैं। भिन्न-भिन्न धर्मोंके अनुयायियोंका उत्क्रान्तिकी एकही सीढ़ीपर होना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न धर्मोंके आचार और संस्कार भिन्न-भिन्न समय और स्थानोंके अनुकूल होते हैं। एक समय हमसे किसी मनुष्यने पूछा,—"तुम्हारा धर्म कौनसा है?" हमें उस मनुष्यकी सङ्कीर्ण बुद्धिपर बड़ी दया आयी। हमने उसे उत्तर दिया कि भाई! सच्चिदानन्द परमात्मा जैसे

एक है, वैसेही धर्म भी एक है। ब्रह्म-धर्म—विश्व-धर्मही मेरा और तेरा दोनोंका धर्म है; बल्कि यही सारे संसारका धर्म है। ऐसा होते हुए भी हिन्दू धर्म, इस्लामी धर्म, ईसाई धर्म आदि भिन्न-भिन्न धर्म दिखाई देते हैं। इसका कारण सुनो। जिस प्रकार कोई हिन्दू अपनी हिन्दुस्थानी पोशाक बदलकर अँगरेज़ी पोशाक पहनता है, तो उसके बाह्य स्वरूपमें किसी क़दर फेर-बदल दीख पड़ता है; परन्तु असलमें वह जो है वही है अर्थात् उसके मूल स्वरूपमें किसी प्रकारका फ़र्क़ नहीं पड़ता; इसी तरह भिन्न-भिन्न धर्मोंके सञ्चालक देश-काल के अनुकूल भिन्न-भिन्न पोशाकें विश्वधर्मको पहनाते हैं; इस कारण उनके बाह्य स्वरूपमें कुछ भिन्नता दीख पड़ती है। बस, इस बाह्यस्वरूपकी भिन्नताके कारण—उनका भीतरी स्वरूप एक होते हुए भी सामान्य लोग उन धर्मोंके असली तत्त्वोंको समझ नहीं सकते। परन्तु जिनके मन सुधर गये हैं, जिनकी बुद्धि सूक्ष्म होगयी है—जिनके विचार उदात्त होगये हैं, वे महात्मा विश्व-धर्मके अभिन्न आन्तरिक स्वरूपको उसके भिन्न-भिन्न बाह्य स्वरूपोंसे पृथक् करके उसी वक़्त पहचान सकते हैं। और जिनके विचार क्षुद्र एवं संकुचित हैं, उन्हें सब धर्मोंका सारभूत विश्वधर्मका सच्चा रहस्य जाननेकी शक्ति नहीं होती। यही कारण है कि, आचार संस्कारादि बाह्य साधनोंके पार उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती। वे लोग कर्मकाण्डके बन्धनमें बद्ध रहनेसे अनुदार एवं स्वार्थी होते हैं। ये कट्टर

कर्मकाण्डी होनेपर भी सच्चे धार्मिक नहीं होते; क्योंकि जो तत्त्व सार्वत्रिक और सार्वकालिक नहीं है, वह धर्मका तत्त्व नहीं है एवं जो विश्वव्यापक नहीं है, वह सच्चा धर्म नहीं है।

एक ईरानी धर्म्माचार्य्य कहता है,—"हे परमेश्वर! तेरे निकट पहुँचनेके लिये, भिन्न-भिन्न मनुष्योंने भिन्न-भिन्न मार्गों को अङ्गीकार किया है; परन्तु तेरे पास लेजानेवाला मार्ग एकही होनेसे, वे सब छोटे-मोटे मार्ग अन्तमें उसी बड़े मार्ग में जा मिले हैं।" एक बौद्ध साधु कहता है,—"ईश्वरने बड़ा चौड़ा ग़लीचा बिछाया है और उसको उसने तरह-तरहके मनोहर रङ्गोंसे रँग दिया है। शुद्ध अन्तःकरणवाला मनुष्य ईश्वरीय सब धर्मोंको पूज्य दृष्टिसे देखता है।" एक चीनी महात्मा कहता है—"मेरा धर्म्म उच्च-नीचको—श्रीमान् ग़रीबको एकही दृष्टिसे देखता है। जिस प्रकार आकाश सबमें एकसा व्याप्त है, वैसेही मेरा धर्म सबके लिये एकसा है—जिस प्रकार जल सबको एकसा साफ़ करता है; उसी प्रकार मेरा धर्म भी सबको एकसा पवित्र करता है। उदार-हृदय महात्माकी दृष्टि भिन्न-भिन्न धर्मोंके महान् सत्य तत्त्वोंकी ओर लगी हुई रहती है। इसके विपरीत क्षुद्र दृष्टिवाले मनुष्य उसके बाह्यस्वरूपकी ओर दृष्टि डालते रहते हैं।" एक हिन्दू सत्पुरुष कहता है—

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अर्थात् यह मेरा है यह पराया है, ऐसा क्षुद्र बुद्धिवाले मनुष्य मानते हैं। उदारचरित महात्मा समग्र पृथ्वीकोही कुटुम्बवत् समझते हैं।

एक ईसाई सज्जन कहते हैं,—"वेदी पर कितनेही तरह के पुष्प चढ़ाओ, तोभी पूजा तो एकही है। स्वर्ग एक महल है, उसके कई दरवाज़े हैं और हरेक मनुष्य अपने-अपने मार्गसे उसमें प्रवेश कर सकता है।" एक ईसाई पूछता है कि क्या हम एकही परमपिताके पुत्र नहीं हैं? ईश्वरने सब क़ौमोंको इस पृथ्वीपर रहनेके लिये एकही खूनसे बनाया है। एक अर्वाचीन सज्जनका कथन है,—"जो बात मनुष्य की आत्माके लिए लाभकारी थी, वह ईश्वरने प्राचीन लोगोंके सामने प्रकट कर दी और जो बात अर्वाचीन लोगोंकी आत्माके लिये लाभकारी है, उसे वह इस समय प्रकट करता है।"

अँगरेज़ीके प्रसिद्ध कवि टेनिसनने कहा है—"मैंने स्वप्नमें ऐसा देखा कि, मैंने पत्थर पर पत्थर जमाकर एक पवित्र घर बनाया। यह पवित्र घर न मन्दिर था, न मसजिद थी और न गिरजा था; परन्तु इन सबसे ऊँचा और सीधा-सादा था और इसका दरवाज़ा ईश्वरीय निःश्वासके प्रवेशार्थ हमेशा खुला रहता था। इस पवित्र घरको सत्य, शान्ति, प्रेम और न्यायने आकर अपना निवास-स्थान बनाया।"

सच्चा धर्म बहुतही आनन्ददायक वस्तु है, जोकि मनुष्य

को आत्माको अलौकिक आनन्द देता है। जब हमें असली धर्मका ज्ञान हो जावेगा ; तब हमें मालूम होगा कि वह धर्म सुख, शान्ति और आनन्दका एक द्वार है; न कि दुःख, अन्धकार और उदासीका साधन। तब तो वह धर्म सबको रुचिकर होगा और कोई भी उसे बुरा न समझेगा। मन्दिरों और मसजिदोंके मुखिया लोगोंको चाहिये कि, इन महान् सत्य तत्त्वोंको भली भाँति समझें। लोगोंको आत्मज्ञान हो और वे सर्वशक्तिमान् परमात्मासे अपना सम्बन्ध समझें, इस बातमें मुखिया लोगोंको चाहिये कि अपना समय और ध्यान लगावें। इससे ऐसा आनन्द होगा कि लोगोंके झुण्डके झुण्ड मन्दिरोंमें आया करेंगे, जिससे मन्दिरोंकी दीवारें फटने लगेंगी और आनन्दपूर्ण स्वरसे वे भजन गाये जावेंगे कि, जिनसे सब लोग उस धर्मको सराहने लगेंगे, जो हमारे प्रतिदिनके जीवनके लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। सब असली धर्मोंकी परीक्षा यह होनी चाहिये कि, वे इस संसारके और वर्त्तमान समयमें प्रति दिनके जीवनके लिये कहाँ तक लाभकारी हैं। यदि कोई धर्म इस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हुआ, तो यह समझना चाहिये कि वह धर्मही नहीं है। हमें एक ऐसे धर्मकी आवश्यकता है, जो प्रतिदिन इस संसारमें हमारे लिये उपयोगी हो। ऐसे धर्मके सिवा और किसी धर्ममें समय खर्च करना मानों उसका दुरुपयोग करना है ; क्योंकि इससे समयके दुरुपयोगके सिवा और कुछ भी प्राप्त नहीं होता। यदि

हम अपने प्रतिदिनके समयको बहुतही विवेक-पूर्वक और बुद्धिमत्तासे अच्छे कार्य्योंमें लगावेंगे तो हमारा जीवन बहुत ही सुखमय व्यतीत होगा। यदि हम ऐसा करनेमें भूल करेंगे, तो हम कुछ भी नहीं कर सकेंगे।

दसवाँ अध्याय ।

सर्वश्रेष्ठ धन प्राप्त करनेकी रीति ।

प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि, अनुभव करनेका क्या मार्ग है। इस बातके तत्त्व बहुत सुन्दर और सच्चे तो हैं ; परन्तु जिस बातको प्राप्त करनेसे ऐसे अच्छे परिणाम निकलते हैं, उसको किस तरह हम अपने आचरणमें ला सकते हैं ?

यह मार्ग भी एक तरहका योगही है ; परन्तु जिस प्रकार का यह योग है, वह हठयोग सरीखा कुछ कठिन नहीं है। उसे तुम हम सभी जन सिद्ध कर सकते हैं। उसको सिद्धिका मार्ग केवल यही है कि, "जिस दैवी गुणको हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसीका निरन्तर मनन और चिन्तन करें और अष्ट पहर उसीके ध्यानमें लगे रहें।"

चिन्तन एवं मनन रूपी हृदयके द्वारोंको खोलनेसे, दैवी गुण वहाँ आकर आपसे आप अपना निवास-स्थान बना लेंगे। जिस प्रकार ऊपरकी ओर हौज़ होनेसे नीचेके खेतोंमें हौज़का पानी आपही आप प्रवाहित होता रहता है ; उसी प्रकार हृदयके चिन्तन एवं मनन रूपी किवाड़ोंको खोलनेसे दैवी

गुण उसमें स्वयमेव प्रवेश कर जाते हैं; क्योंकि सब प्रदेशोंमें बहना जैसे जलका स्वभाव है; उसी प्रकार मनुष्यके शुद्ध हृदयमें प्रवेश कर, निरन्तर प्रवाहित होते रहना दैवी गुणोंका स्वाभाविक धर्म है। हमारा और परमात्माका कैसा, कितना और क्या सम्बन्ध है, इसकी विवेचना हम कई बार कर चुके हैं। परमात्मासे एकताकी इच्छा रखनेवाले मुमुक्षुको सबसे पहले चाहिये कि, वह अपने अन्तःकरणकी शुद्धि कर ले; जिससे उसमें दैवी गुणोंका आविर्भाव होने लगे। चिन्तन एवं मनन रूपी योगाभ्याससे दैवी गुणोंको ग्रहण करनेकी शक्ति एवं पात्रता हमें प्राप्त होजाती है और दैवी गुण हमें अवश्यमेव प्राप्त होंगे, ऐसी दृढ़ आशा रखनेसे दैवी गुण हमें प्राप्त होते हैं और परमात्मासे एकताका अनुभव भी होने लगता है।

पहले-पहल इस प्रकारके योगाभ्यासको एकान्त स्थलकी आवश्यकता होती है। जिस जगह इन्द्रियोंको क्षुब्ध करनेवाले बाह्य विषयोंसे अपने मनका चंचल होना सम्भवित होता है, उस स्थानका वर्जन करना चाहिये और बिलकुल शान्त एवं एकान्त स्थलमें, एकाग्रचित्त होकर, दैवी गुणोंके चिन्तन एवं मननमें कुछ समय लगाना चाहिये। सच्ची और पूर्ण शान्ति परमात्मामें ही है, यह प्रत्येक मनुष्यको ध्यानमें रखना चाहिये। इतनी पात्रता और ग्राहकता हमें प्राप्त कर लेनी चाहिये कि, जिससे वह शान्त मूर्त्ति हमारे हृदय-मन्दिरमें वास करे। आत्मामें परमात्मा निरन्तर वास करे,

ऐसी अचल अभिलाषा रखनी चाहिये और इस अभिलाषाके पूर्ण होनेमें किंचिन्मात्र भी सन्देह न करते हुए दृढ़ विश्वास रखना चाहिये। जब हमारी आत्मामें परमात्माका विकाश होगा, तो लोकोत्तर और अवर्णनीय प्रभाव हमारे मन पर—हमारे शरीर पर—शीघ्रही दृष्टिगत होने लगेगा। हमारा योगाभ्यास पूर्ण होकर, जहाँ हमें ब्राह्मी स्थिति प्राप्त हुई कि शान्त, स्थिर एवं सर्वप्रकाशक परमात्म-ज्योतिके हमारे हृदय-मन्दिरमें प्रज्वलित होनेका अनुभव हमें पद पद-पर होगा। परमात्मासे एकताका अनुभव करना कैलाश-प्राप्ति है—यही स्वर्ग-सुखका अनुभव करना है—यही परमानन्दमें रमना है। यह ब्राह्मी स्थिति जहाँ-हमें प्राप्त हो गयी कि; फिर जिस प्रकार पृथ्वीके अनन्त आकाशमें घूमते रहने पर भी उसका वायुमण्डल उसे कभी छोड़ता नहीं; उसी प्रकार चाहे हम निर्जन वनमें रहें, चाहे हिमालयकी गुफामें वास करें या चाहे हम किसी घनी बस्तीमें अपना निवास-स्थान बनावें; परन्तु वह ब्राह्मी स्थिति हमें नहीं छोड़ेगी अर्थात् क्या वन, क्या जङ्गल, क्या गाँव और क्या शहर सर्वत्र हम निरन्तर ब्राह्मी स्थितिमें—परमानन्दमें—रमण करते रहेंगे। अलौकिक आनन्द लोकोत्तर बुद्धि हममें विकसित होती रहेगी और इसी उच्चतम स्थितिसे लोकोत्तर सौन्दर्य्य, दैवी प्रेरणा और महत्शक्तिका विकाश भी हमारे हृदय-मन्दिरमें होगा।

दैवी गुणोंके चिन्तन और मननको एकान्त स्थलको आवश्यकता केवल आरम्भमें रहती है। हमारा योगाभ्यास जहाँ परिपक्व दशाको प्राप्त हुआ कि, हम फिर भरे बाज़ार अपने मनको बाह्य विषयोंसे हटाकर क्षणभरमें एकाग्र कर सकते हैं—फिर तो एकान्त स्थलके समान बाज़ारमें भी परमात्मा हमारा उपदेष्टा, अनुमन्ता एवं प्रेरक है,—यह बात हम नहीं भूलेंगे और फिर तो अनन्त शक्ति, अतुल प्रेम, अगाध ज्ञान, पूर्ण शान्ति एवं सकल समृद्धि आदिसे भूषित परमात्म-मूर्त्तिका निदिध्यास हर जगह कुछ करते रहने पर भी हमें सदा लगा रहेगा। इसमें किसी प्रकारको बाधा नहीं पड़ सकती। यह स्थिति जिसे प्राप्त हो गयी है, उसे गीतामें "नित्याभियुक्त" कहा है। ऐसे मनुष्यका परमात्म-चिन्तन कभी बन्द नहीं होता। उसका परमात्मासे निरन्तर सान्निध्य बना रहता है। सच्चा ब्राह्मण होनेका यही मार्ग है। क्योंकि कहा है कि "जन्मनाजायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते" यह बिल्कुल सही है। हमें पशु-वृत्ति तो यह नर-देह प्राप्त होते ही प्राप्त हो जाती है; परन्तु दैवी वृत्तिकी प्राप्ति सहजमें नहीं होती। उसे प्राप्त करनेके लिये जगद्गुरु एवं जगत्पिता परमात्माके पास जाकर हमें उससे अपने अन्तःकरणको प्रकाशित करनेवाला गायत्री मन्त्रकी संस्कारपूर्वक दीक्षा लेनी चाहिये। इस प्रकार जब हमारा उपनयन होगा, तब हमारा पशु-स्वभाव नष्ट हो जावेगा—हममें देवत्व प्रकट होगा और ऐसा होनेसे

हमारे सकल पुरुषार्थों की सिद्धि होगी—हम जीवन्मुक्त हो जावेंगे। परमात्माको पहचाननाही सब धर्मोंकी इति कर्त्तव्यता है। उसको यथार्थ पहचान हमें जहाँ हुई कि संसारमें जो कुछ सिद्धि प्राप्त करना हम चाहेंगे, वह हमें हो जावेगी।

परमात्मासे एकताका अनुभव करनेको जिसकी इच्छा है और वह इच्छा अवश्यमेव सफल होगी, ऐसा जिसका दृढ़ विश्वास है उसको इसी जन्ममें ब्राह्मी स्थिति प्राप्त होती है। दैवी गुणोंकी ओर हमने जहाँ अपने अन्त:करणको लगाया कि आज नहीं तो कल वे हममें अवश्यमेव विकसित होंगे। सुप्रसिद्ध गोएथ कविने एक जगह कहा है,—"जो कुछ कार्य्य करनेका तुमने दृढ़ संकल्प किया है, उसके करनेमें एक दम लग जाओ। हमारे हाथसे अमुक बात अवश्यमेव होगी ऐसा जहाँ मालूम पड़े कि, उसको करनेके लिये बिना संकोच हाथ लगा दो"।

गौतम सिद्धार्थने कहा था कि सत्य क्या है, इस बातका ज्ञान अब मुझे हुआ; अतएव अब मैं अपनी कार्य्यसिद्धि कर सकूँगा—मैं बुद्ध होजाऊँगा। बस इसी निश्चयकी प्रबलताके कारण वह बुद्ध होगये और उन्हें इसी लोकमें निर्वाण-प्राप्ति हुई। इस लोकमें भी मनुष्य निर्वाण प्राप्त कर सकता है, इसी वजहसे वह लाखों मनुष्योंके गुरु बने और उन्हें मुक्ति-पथ पर लाये।

नवयुवक महात्मा ईसाने कहा था—"क्या तुम्हें नहीं मालूम है कि मुझे अपने पिताका काम करना आवश्यक है ?" उन्होंने इस बातको अपने जीवनका उद्देश्य बनाकर इस तत्त्व को पूर्णतया समझ लिया था कि, मैं और मेरा पिता एकही हैं। इसीसे उन्होंने इस संसारमें रहकर स्वर्गीय राज्यपर अपना पूरा अधिकार कर लिया। उनका यह उपदेश था कि इस संसारमें, इस तत्त्वको, इस वक्त भी सब लोग समझ सकते हैं। बस, इसी उपदेशके कारण वह लाखों मनुष्योंके गुरु बने और उनके निर्वाणके कारण हुए।

जहाँ तक असली बातोंका सम्बन्ध है, हम सारे संसारमें फिरकर यही मालूम करेंगे कि, इससे अधिक प्रभावशाली और लाभकारी शिक्षा और कुछ नहीं होसकती कि, प्रथम ईश्वरीय राज्यको ढूँढो, जिससे और सब चीजें तुम्हें आपसे आप प्राप्त हो जावेंगी। हमारा ख़याल है कि ऐसा कोई भी मनुष्य, जो अपने आप सच्चा और प्रमाणिक है, नहीं होगा जो इस उपदेशको ग्रहण करनेमें और यह उपदेश किन नियमोंपर आधार रखता है यह जाननेमें भूल करे।

हमें स्वतः ऐसे मनुष्योंका हाल मालूम है, जो इस अनन्त जीवनसे अपनी एकता समझनेके कारण और ईश्वरीय पथ-प्रदर्शनकी ओर अभिमुख होनेके कारण इस बड़े और आवश्यक सत्य तत्त्वके मूर्त्तिमन्त ज्वलन्त दृष्टान्त बन गये हैं। ये वे लोग हैं जिनको अपने जीवनमें केवल मामूली सूचनाही

नहीं मिलती; वरन् पूर्ण विश्वसनीय शिक्षा मिलती रहती है। वे इस बातको समझकर जीवन व्यतीत करते हैं कि हम और यह अनन्त शक्ति एकही हैं और वे बराबर इस अनन्त शक्तिके साथ अपना ऐक्य-भाव रखते हैं, जिससे वे स्वर्गीय राज्यका निरन्तर उपभोग किया करते हैं। उन्हें प्रत्येक वस्तु विपुलतासे प्राप्त होती है। उन्हें किसी चीज़की कमी नहीं रहती; वे जो कुछ चाहते हैं उन्हें वह प्राप्त हो जाता है। उन्हें कभी यह नहीं सोचना पड़ता कि क्या करें? कैसे करें? उनका जीवन चिन्ता-रहित जीवन है; क्योंकि वे इस बातका भली भाँति परिज्ञान रखते हैं कि, अनन्त शक्ति हमारी मार्ग-प्रदर्शक है; जिससे हम ज़िम्मेवरीसे बरी हैं। यदि इन मनुष्योंमें से किसी का हाल क्रमसे दिया जाय और विशेषकर दो तीन मनुष्योंका वृत्तान्त संक्षिप्ततया कहा जाय, जो इस वक्त हमारे मनमें है, तो यह बात निःसंशय है कि कुछ लोग उसे चमत्कार-परिपूर्ण नहीं, तो अविश्वास-योग्य ज़रूर समझेंगे। हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि जो बात एक मनुष्य प्राप्त कर सकता है, उसे सब लोग प्राप्त कर सकते हैं। यही वास्तवमें नैसर्गिक और सच्चा जीवन है। प्रत्येक मनुष्यका नित्यप्रतिका जीवन इसी तरह का हो सकता है; यदि वह इन ऊँचे तत्त्वोंके साथ एकता रखकर अपना जीवन व्यतीत करे। इस तरहका जीवन व्यतीत करना उस ईश्वरीय क्रममें प्रवेश करना है, जो सारे संसार में वर्तमान है। जब कोई मनुष्य इस क्रममें प्रवेश कर

जाता है, तब फिर उसे जीवन दूभर और कठिन नहीं मालूम होता और वह नित्यप्रति इस तरह सहज और नियमानुसार चला जाता है जैसे ज्वार-भाटा होता है, जैसे तारागण अपने चक्रमें चक्कर लगाते रहते हैं और जैसे ऋतुओंका परिवर्त्तन होता रहता है।

हमारे अपने जीवनमें सब तरहके झगड़े, शक और शुबहे तकलीफें और बीमारियाँ एवं भय आदि पानेका कारण यह है कि, हम ईश्वरीय क्रमानुसार जीवन व्यतीत नहीं करते। हमें ईश्वरीय क्रमका जितना परिज्ञान होगा, उतनाही हम उपर्युक्त सब प्रकारके अनिष्टोंसे बचेंगे। आत्मिक भावके विरुद्ध चलना कठिन कार्य्य है। आत्मिक भावके अनुसार आचरण करना, महान् नैसर्गिक शक्तिका लाभ उठाना है। इसमें किसी तरह का भय नहीं। इस अनन्त जीवन और शक्तिसे अपनी एकता का ज्ञान होनाही ईश्वरीय क्रममें प्रवेश होना है। जब हम परमात्माके साथ सादृश्य प्राप्त कर लेंगे, तब हम अपनेआसपास की सब वस्तुओंके साथ—अखिल सृष्टिके साथ—एकता प्राप्त कर लेंगे और इन सबसे बढ़कर हम अपने आपसे यहाँ तक एकता प्राप्त कर लेंगे कि शरीर, आत्मा और मन परस्पर मिल जावेंगे अर्थात् एक दूसरेके विरुद्ध कभी आचरण नहीं करेंगे। ऐसा होनेसे हमारा जीवन पूर्ण और योग्य हो जावेगा।

ऐसा होनेसे भविष्यमें इन्द्रियगतजीवन हम पर जय नहीं पा सकेगा; हम भौतिक इच्छाओंके वशमें नहीं रहेंगे; हमारी

भौतिक दशा मानसिक दशाके वशमें हो जावेगी और यह मानसिक दशा आत्मिक दशाके अधीन होकर, हमेशा दिव्य सत्यसे प्रकाशित रहेगी।

फिर तो जीवनकी अपूर्णता नष्ट हो जावेगी, उसका एक-तरफापन चला जावेगा। वह सुखमय—आनन्दपरिपूर्ण होता जावेगा और नित्यप्रति जीवनका आनन्द और शक्ति द्विगुण होती जावेगी। इस तरह हमें इस बातका परिज्ञान हो जावेगा कि मध्यम मार्ग सर्वश्रेष्ठ है; एकदम फ़कीरोंकी ज़िन्दगी या एकदम अय्याशी दोनों इसके सबूत हैं और इनमेंसे कोई बेह-तर नहीं है। हरेक चीज़ काममें लानेके लिये बनी है;परन्तु हरेक चीज़को बुद्धिमानीसे काममें लाना चाहिये, जिससे उससे पूरा-पूरा आनन्द मिल सके।

जब हम मन और आत्माकी इन ऊँची दशाओंमें जीवन व्यतीत करते हैं, तब हमारे होश-हवास भी ठिकानेसे रहते हैं और हम पूर्णताको प्राप्त करते जाते हैं। ज्यों-ज्यों शरीर कम मोटा और कम भारी होता जाता है, उसका गठन और डीलडौल अधिक सुघड़ होता जाता है;त्यों-त्यों हवास अधिक खूबसूरत होता जाता है। यहाँ तक कि जिन शक्तियोंको हम अब अपनी नहीं समझते, वे शक्तियाँ भी क्रमशः उन्नत होती हैं। इस प्रकार हम एक बिलकुल कुदरती और असली रीति से विवेकके ऊँचे राज्यमें पहुँच जाते हैं, जिससे कि उच्चतर नियम और सत्य हम पर प्रकट होते हैं। जब हम वहाँ पहुँच

जाते हैं, तब हम और लोगोंकी तरह अटकल नहीं लगाते कि अमुक-अमुक मनुष्यों द्वारा जो शक्तियाँ और सन्देशे प्रकट किये गये हैं, वैसी बातें उनमें वस्तुतः थीं या नहीं बल्कि हम स्वयं सच सच हाल मालूम कर सकते हैं और हम उन मनुष्योंमें भी नहीं होते, जो लोगोंको सुनी-सुनायी बात पर चलानेकी चेष्टा करते हैं; बल्कि जिस बातकी हम चर्चा करते हैं उसको अच्छी तरह जानते हैं और इस तरह हमारा कथन प्रमाणिक होता है। बहुतसी बातें ऐसी हैं जिनको हम यों नहीं जान सकते और केवल उसी दशामें जान सकते हैं, जब कि हम उच्चतर जीवन व्यतीत करें। "जो मनुष्य परमात्माके आदेशपर चलता है वही इस सत्यको समझ सकता है।" यह प्लाटिनसका कथन है।

जो मन परमात्माको देखना चाहता है, उसके लिये स्वयं परमात्मा बनना आवश्यक है। इस प्रकार जब हम इन उच्चतर नियमोंको भली भाँति समझ सकेंगे और अपनेमें प्रकट होने देंगे; तो हम भी ज्ञाता बन जावेंगे और उन्हीं बातोंको और लोगोंपर विदित कर सकेंगे।

जब कोई मनुष्य इस उच्च ज्ञानसे अपनी शक्तियोंको भली भाँति समझने लगता है, तो वह मनुष्य जहाँ कहीं जाता है और अपने सहयोगियोंसे मिलता है वहाँ और उन सबमें ऐसा मन्त्र फूँकता है कि वहाँ और उनमें भी इस प्रकारकी शक्ति लहरें मारने लगती है। हम लगातार और लोगोंमें

वैसाही असर पैदा करते रहते हैं, जो हमारी ज़िन्दगी में प्रत्यक्ष है। हम यह काम उसी तरह करते हैं, जैसे कि हरेक फ़ूलमेंसे उसकी निराली खुशबू या बदबू करती रहती है। गुलाबका फूल अपनी खुशबू हवामें फैलाता है और जो लोग उसके पास आते हैं वे उसकी खुशबूसे तरोताज़ा होजाते हैं परन्तु एक विषैली घास अपनी कड़वी बू फैलाती है, उससे ताज़गी या तरावट कुछ भी नहीं होती और अगर कोई मनुष्य उसके पास बहुत देर तक रहे तो सम्भव है कि, उसकी बदबूसे वह बीमार हो जावे।

जीवन जितनाही उच्च होगा, उसमेंसे उतनाही अधिक उत्साह दिलानेवाला और दूसरोंको लाभ पहुँचानेवाला प्रभाव प्रकट होगा और जीवन जितनाही छोटे दरजेका होगा उसका उतनाही हानिकारक प्रभाव आसपासके लोगोंपर होगा। हरेक मनुष्य किसी न किसी प्रकारकी तासीर बराबर फैलाता और दूसरोंपर उसका प्रभाव डालता रहता है।

जो मल्लाह हिन्दुस्थानके समुद्रोंमें जहाज़ चलाते हैं उनसे हमने सुना है कि कितनेही टापुओंमेंसे दूरसेही, समुद्रके रास्ते चन्दनकी सुगन्ध आने लगती है; इसलिये वे केवल सुगन्धसे उन टापुओंको देखनेसे पहलेही बता देते हैं कि वे टापू पास आगये। क्या तुम इससे यह नहीं समझ सकते कि ऐसे शरीरमें एक ऐसी आत्माका होना कितना लाभदायक होगा कि जब तुम इधर-उधर जाओ तो एक दबङ्ग और गूँगी शक्ति

तुममें से निकले, जिसको सब लोग समझें और उसका प्रभाव सब पर पड़े ? तुमसे स्वर्गीय भाव प्रकट हो और तुम जहाँ कहीं जाओ बराबर बरकत फैलाते जाओ और तुम्हारे मित्र और सब लोग यह कहें कि इनके आनेसे हमारे घरमें शान्ति और आनन्द आता है। इनका आना मुबारक हो और जब तुम सड़क परसे होकर निकलो ; तो थके-माँदे और पापके रोगी स्त्री-पुरुषों पर शुद्ध पवित्र असर पड़े ; जिससे उनमें नयी इच्छाएँ और नया जीवन उत्पन्न हो तथा वह थोड़ा भी जिसके पाससे तुम गुज़रो तुम्हारी ओर नम्रता और शौक़से देखे और सिर झुकावे ? जब मनुष्यकी आत्मामें परमात्मा प्रवेश कर जाता है, तब उसमें इस प्रकारकी प्रभावशाली शक्तियाँ आजाती हैं। यह जाननेसे कि इसी दुनियामें इसवक्त हमें ऐसा जीवन प्राप्त हो सकता है, हरेक मनुष्यको अपार आनन्द प्राप्त होताहै और जब जीवन इस दशामें पहुँच जावेगा तो कमसे कम एक रागमें नीचे लिखे विचार गानेको जी चाहेगा—

"अहा ! मैं सदाके लिये इस अनन्त जीवनमें विद्यमान हूँ। मेरे निकट सब वस्तुएँ ईश्वरीय हैं। मैं स्वर्गकी मीठी रोटी खाता हूँ और स्वर्गका अमृत-जल पीता हूँ। जब मैं जगमगाते हुए इन्द्र-धनुषके लाल नीले और सुनहले रङ्गोंकी झलक देखता हूँ ; तो उनकी रोशनीमें मुझे परमात्माका प्रेम दिखाई देता है। नीचे लिखी चीज़ोंको देखकर मेरी आत्मा

गद्गद हो जाती है और मेरी वृत्तियाँ खुशीसे फूल जाती हैं— चमकीले पक्षी जो गाते रहते हैं, मनोहर फूल जो खिलते रहते हैं और जिनकी बढ़िया महक चारों ओर खुशबू ही खुशबू फैलाती है, प्रातःकालकी रङ्गत जो भड़कीली होती है और चाँदनी रातकी शानदार चमक।"

जब कोई मनुष्य अनन्त जीवन और शक्तिसे अपने ऐक्य-भावका भली भाँति अनुभव करता है और उसमें सदा जीवन व्यतीत करता है; तब और बाकी चीज़ें उसे आपसे आप मिल जाती हैं। इसी तरहका जीवन व्यतीत करनेसे ऐसी मनोहर और प्रभावशाली वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और ऐसी प्रसन्नता होती है कि जिसका अनुभव वही जीवन कर सकता है जिसका सम्बन्ध अनन्त जीवनसे होता है। इसी तरहका जीवन व्यतीत करनेसे संसारमें स्वर्गका सुख प्राप्त होता है। इसी तरहसे हम स्वर्गको पृथ्वीपर ले आते हैं या यह कहो कि पृथ्वीको स्वर्गमें ले जाते हैं। इसी तरहसे हम दुर्बलता और कमहिम्मतीको बलमें, शोक और दुःखको खुशीमें, खटकेको विश्वासमें और इच्छाओं तथा आशङ्काओंको तृप्तिमें बदल दे सकते हैं। इसी तरहसे हम पूरी शान्ति और शक्ति तथा हरेक वस्तु यथेष्ट रूपसे पा सकते हैं। इसी तरह मनुष्य अनन्तमें लीन हो सकता है।
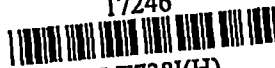
सम्राट् अकबर

हिन्दी-संसार में आजतक ऐसी पुस्तक नहीं निकली। इस पुस्तक के पढ़ने से इतिहास, उपन्यास और जीवन-चरित तीनोंका आनन्द मिलता है। ऐसी-ऐसी बातें मालूम होती हैं, जो बिना ५।७ हज़ार रुपये की पुस्तकें पढ़े हरगिज़ नहीं मालूम हो सकतीं। इसमें ५०० सफ़े और प्रायः एक दर्जन हाफटोन चित्र हैं। मूल्य २॥) हम अपनी ओरसे कुछ न कहकर एक अतीव प्रतिष्ठित अँगरेज़ी मासिक पत्र की अविकल सम्मति नीचे लिखे देते हैं। पाठक इसे पढ़कर देखलें कि हमारा लिखना कहाँतक ठीक है :—

"माडर्न रिव्यू" लिखता है :—

This again is a life of the great Musalman Emperor and a very well written life indeed. The method followed is an excellent one for writing lives. The author has made use of lot of books on the subject and his treatment is not merely historical—rather he has, after Macaulay, made use of his imagination and given a graphic colour to what he has written. His discriptions are very nice and the book reads something like a novel. The great hero of the book has been described in all his aspects. In the book we find besides a very valuable reproduction of the contemporary life It has distinct superiority over all other books on the subject, some of them published long ago. We remember of a book publfshed by the Hindi Bangabasi Office on the same subject and a comparison of the two brings to light the distinct superiority of the book under review in almost all respects. A large number of blocks and pictures etc., adorn the book. We would put this book on a high pedestal of the Hindi literature and recommend to other writers of lives the method followed in it.

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, कलकत्ता।